४. अब अपर साधनों में वृथा परिश्रम की आवश्यकता कहां तक रह-गई, विचार करने से स्वयम् ही प्रतीत हो जावेगी। जब यह निश्चय हो गया कि स्वार्थ और परमार्थ दोनों की सुलभता में "भक्ति" से सुगमतर कोई नहीं, और वह बिना "भक्तमाल" प्राप्त होही नहीं सकती, तो अब भक्तमाल की चाह हुई।

"भक्तमाल" यद्यपि भाषाही है, तथापि उसका बोध कठिन प्रतीत होता है॥

(चौ०) हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम तुम्हार सेवक असुरारी॥

५. परहित परायण श्री प्रियादास जी ने प्रथम उसके विस्तार करने पर कटिबद्ध होकर "भक्ति रस बोधिनी" नामक टीका रची। श्री नाभा स्वामी ने जिन महात्माओं का केवल नामही वर्णन किया था, नाना पुराणों से बहुतों का यश और श्री युगल सरकार के चरणारबिंद में उनकी अलौकिक प्रीति दरशा कर, श्री प्रियादास जी ने भक्तमाल की चाह को और तीक्ष्ण कर दिया। इस टीका से अवश्यही बहुत प्रकाश तथा उपकार हुआ। श्रीप्रिया दासजी की जय॥

६. उनके उत्तरोत्तर और कई प्रेमियों ने परिश्रम किया और उनका श्रम सफल भी हुआ। (पृष्ट ३९ देखिये)

किया क्या इन महानुभावों ने कि, किसी ने तो मूल लिखकर जहां तहां टिप्पनी (नोट) लिखी; और किसी ने अपने आनन्द की तरंग में आकर श्री भक्तमाल की काया पलट दी, कि उसका और ही रंग रूप होगया। एवं, दोहा चौपाई, उरदू, फारसी, संस्कृतादि में, श्री भक्तमाल जी के कितने रूप धारण कराये गए; इसके कहने की बहुत आवश्यकता नहीं। अपने अपने ढंग में वे सब अच्छे हैं।

यह सब तो रामकृपासे हुआ, पर यह अभी तक न हुआ कि जिसको देख कर, कोई भक्तमाल को बिचार कर उसका वास्तविक आनन्द ग्रहण कर सकता; कठिनता की झलक ज्यों की त्यों बनी ही रही—अब इधर तो वर्तमान काल के प्रेमियों के प्रेम और उधर भक्तवत्सलता बिरद

दोनों की, एक ऐसे रसिक की आवश्यकता हुई कि जो अपने प्रेम में से किंचित आनन्द औरों को भी अर्पण कर सके। फिर क्या था प्रेमियों के शुद्ध अतःकरण में विशेष रूप से बास करने वाले प्रभु ने, अपने एक कृपा पात्र के कर कमल में बिचित्र लेखनी देकर इस अपूर्व कार्य पर उद्यत करही तो दिया—

१. जैसी कठिन रास्ता थी वैसेही "भक्ति सुधाबिन्दु स्वाद" के रसिक तिलककार ने किसी का साथ न देकर अपनी अलगही राह निकाली और वह सीधा पथ भी कैसा कि जिसपर चलने से श्रीराम कृपा से फिर कठिनता से भेंटही न हो। सूक्ष्म बिचार से तिलककार ने निस्स-न्देह आवश्यकीय कार्य किया है, कि श्री नाभा जी का मूल और साथही साथ श्री प्रियादास जी की टीका और फिर सरल भाषा में दोनों का भावार्थ; ठौर ठौर पर भाषा और संस्कृत ग्रन्थों के प्रमाण के साथ, कि जो अन्तःकरण से मोह की जड़ को उखाड़ कर भक्तमाल के मूल को जमा दे, बर्णन किया है।

सुगमता और सरलता को देख कर शुद्धता ने भी पूरा साथ दिया। मूल दोहे, छप्पै और कवित्तों के भावार्थ के अतिरिक्त प्रायः कठिन शब्दों के अर्थ भी लिख दिये हैं। चौथे कबित के अर्थ में भक्ति पंच रस का बशीकर यन्त्र देख कर अन्तःकरण अपना तन्त्र मंत्र भूल ही जाता है। —यह तिलक, रसिक के रस का भी पता बताता है। प्रथम ही श्री वैष्णव नामावली, सन्तों के चरणारबिन्द में तिलककार की प्रीति प्रतीत और सतसंग की व्यवस्था बताए देती है।

छठे मूल अर्थात् द्वितीय छप्पै के तिलक में श्री चरण चिह्नों का बर्णन महारामायण आदि ग्रंथों के अनुकूल कैसा विचित्र यंत्रों में दर्शाया है कि जिसको करतल गत आमलक ही सा कहना चाहिये-॥ रसिक तिलककार जी ने एक सराहनीय कार्य्य यह भी किया है कि प्रत्येक छप्पै और कवित के साथ ऐसा अंक लगा दिया है कि जिससे सर्वत्र शीघ्रही यह निश्चय हो सकता है कि मूल में से केतने हो चुके और केतने अब शेष रह गये हैं,

जैसे ३६९ वें पृष्ठ के २३ वें छप्पै के साथ $\frac{१३२}{८४२}$ अंक लिखा है; इससे यह जाना जाता है कि १३२ हो चुके और समस्त ८४२ हैं जिन में से अब ७१० बाकी रह गए।

अद्भुत, रमणीय और हितकारी होने पर भी, कठिनता के कारण से श्रीभक्तमाल का सर्व साधारण में कम प्रचलित होना ही किसी अनोखे तिलक की आवश्यकता पुकार रहा था।

८. श्रीमणिराम छावनी में इन दोनों योग्य पंडित श्री शिवराम शर्म्मा भक्तमाली जी की अपूर्व कथा, भूले हुए भक्तमाल को अनेक सन्तों के हृदय में ऐसा स्मरण दिला रही है कि श्री राम कृपा से अब इसके वियोग का कम भय होता है॥

९. सराहनीय उत्साह तो श्रीसीतामढ़ी बुलाकीपुरनिवासी बाबू बलदेव नारायण सिंह जी वकील (गयाजी) का है कि जिनकी श्रद्धा और उदारता से ग्रन्थ हम लोगों के हस्त गत हो रहा है।

१--१०--१९०४ रामगया प्रसाद।

आरतिभंजन श्रीमहावीराष्टक।

शैल सभीत बसै "शुभ कंठ" दियो तेहि बन्धु स्वधाम निकारी। ताहि मिलाइ सिया पति से, करवाइ मिताइ रु "बालि" सँहारी॥ कीन्ह सुखी, कपिराज बनाय, दिवाय धनादिक तख्त बिठारी। "गोप्यअली" जग ख्यात अहै कपि! आरतिभंजन रीति तिहारी॥ १॥

खोजत सीय सबै कपि भालु पियासे अचेत भए बन भारी। तौ चढ़ि शैल बिलोकेउ दीख पर्यो इक भूर बड़ो बपि झारि॥ बेगि लिवाइ गए सबहीं तहँ प्राण रख्यो जु पियाइ सुबारी। गोप्यअली जग ख्यात अहै कपि! आरति भंजन रीति तिहारी॥ २॥

शोच पर्‌यो सबहीं जब सागर कूल बिना सुधिपाय बिचारी। ताहि समै शुचि ऋक्ष पती बल तेज तुम्हार सुनायौ प्रचारी ॥ मांगि निदेश चले दिशि लंक, बिलोकि भए कपि ऋक्ष सुखारी। गोप्य अली जग ख्यात अहै कपि! आरतिभंजन रीति तिहारी ॥ ३ ॥

सीय जबै कृत रावण व्याकुल होइ, चहैं तन आपन जारी। मांगेउ आग अशोक ते, वाहि समै चट तूं दिय मुद्रिक डारी॥ आपन रूप दिखाइ, सुनाइ सँदेश, प्रभू दुख शोक निबारी। गोप्य अली जग ख्यात अहै कपि! आरतिभंजन रीति तिहारी ॥ ४ ॥

शक्ति लगी जब "लच्छन" के प्रभु सेन समेत हि देखि दुखारी। धाम समेत "सुखेन" हि लाय, बहोरि महीधर द्रोन उपारी ॥ बैद्य पिछानि पिलायेउ मूरि, उठे चट भा सबहीं सुख भारी। गोप्य अली जग ख्यात अहै कपि! आरति भंजन रीति तिहारी ॥ ५ ॥

धारि "बिभीषण" रूप जबै "महिरावण" आएउ सेन मँझारी। कांधे चढ़ाइ गयो दोउ भाइ लै, सेन समस्त पर्‌यौ दुखभारी ॥ वाहि समै तुम जाइ पताल ले आइ दोऊ प्रभु, दुष्टहि मारी। गोप्य अली जग ख्यात अहै कपि! आरतिभंजन रीति तिहारी ॥ ६ ॥

बैठि कुशासन "केकइनन्दन" शोकित चाहत प्रान निकारी। ताछिनु जाय, सुनाये "सिया युत लच्छन आवहिं क्षेम खरारी" ॥ स्रौन सुने, उठि तोहि मिले,

दुख भाजि सबै भयो जी रखवारी । गोप्य अली जग ख्यात अहै कपि ! आरतिभंजन रीति तिहारी ॥ ७ ॥

भक्तन पै जब गाढ़ पस्यो अरु व्याकुल ह्वै कपि ! तोहि पुकारी । नाशेउ क्लेश तबै अंजनीसुत ! सो किय देर क्यों ? बेर हमारी ॥ जो मम देखहुगे अघ अवगुण, तौ कलपांत न होइ उबारी । गोप्य अली जग ख्यात अहै कपि ! आरति भंजन रीति तिहारी ॥ ८॥

(कवित्त)

"लोचन तिहारे दुख मोचन हमारे हैं"

जौन जादुभरे नैन मिथिलापुरी में जाय, नगर निवासिन बिकल करि डारे हैं। खिरकी अटारी औ झरोखे लागि नारी सबै ब्याकुल निहारैं नेकु लाज ना सँभारे हैं॥ स्वबश करण की सुशक्ति, ही कहां लो कहौं, संग २ फिरैं देखो शिशहु बेचारे हैं। जाके धौल यश कवि कोविद पुकारे, वेई लोचन तिहारे, दुख मोचन हमारे हैं ॥१॥

हेरवे जेहि ओर नैन कोर मति भोर भयो कैसो चित्त चोर आयो शोर पुर सारे है। प्रेमी जन तुरत ही प्रेम रंग बोर उठे भव के मोर तोर तें तुरत भये न्यारे हैं। छुटि गई शंका यम जोर ना चलत कछु संसृत बिहाय भ्रम भांड फोरि डारे हैं। त्रैगुन तें तारैं हेतु तीन रंग धारे वोई लोचन तिहारे दुख मोचन हमारे हैं ॥ २ ॥

जौने कृपा कोर तें निहारि प्रहलाद ग्रोर बिपति समुह के झकोर तें उबारे हैं। देखतहीं, संकट सुकंठ केर दूरि भयो; ग्रागम निगम में प्रसिद्ध जग सारे हैं। बंक भृकुटी तें कियो रंक बिप्र राव सम, कौन नहीं जानै ऐसे चरित तिहारे हैं॥ दीन* हितकारे, जाहि सन्त हैं पियारे वेई लोचन तिहारे, दुख मोचन हमारे हैं॥ ३॥ (*रामगयाप्रसाद)

मन में मनन को न काज कछु है विशेष, चित्त में न चिन्तवन, जोग कष्ट सारे हैं। काहु तिय केर बध करिबो परैगो नाहिँ, कर तें उठायबे को बोझ नाहिं भारे हैं॥ सैन के एकत्रित को नेकहु प्रयोजन ना, युद्ध हेतु लांघिबो पयोनिधि ना खारे हैं। जौने कृपा दृष्टि तें निकारे बहु कष्ट, वेई लोचन तिहारे दुख मोचन हमारे हैं॥ ४॥

मीनवत भक्त प्रेमबारि में मगन देखे; खंज सम कहि केते सगुन बिचारे हैं। जनमन बन में फिरे ते मृग सम कहे; हर हिय सर में कमल रतनारे हैं॥ बेद उपमा ते चारि फल के देवैया दुख दारिद हरैया कबि कोबिद पुकारे हैं॥ जापै जननी ने केते मणि वारि डारे वेई लेचन तिहारे दुख मोचन हमारे हैं॥ ५॥

श्रीसीतारामनाममंजरी ।

(छन्द रोला)

जयति बिमल बिज्ञान बपुष बिज्ञान निधाना ।
जयति तुरीया जय तुरीय पर परा प्रधाना ॥ १ ॥
जय परमात्मा ब्रह्म जयति परतमासुशक्ती ।
जय प्रेमा अनुरक्ति प्रदा प्रद परा सुभक्ती ॥ २ ॥
जय जगदीशा जगदधीस जनु पुरुष प्रकृति तनु ।
जयति जगत कारण निमित्त जुगजनक जननि जनु ॥ ३ ॥
जय बामांगी दक्षिणांग आसीन अभंगा ।
जय गौरांगी स्यामलांग छबि जमुना गंगा ॥ ४ ॥
जय भगवती भगवान परस्पर प्राण प्रिया प्रिय ।
जयति किशोरी जय किशोर बपु नित्य दिव्य क्रय ॥ ५ ॥
जय प्रभु वेदप्रशंसनीय जय श्रुतिप्रशंसनी ।
शिव मनमानस हंस उमा मानस सुहंसनी ॥ ६ ॥
जय संसेवित बिष्णु जयति जयरमासेविता ।
जयति राम देवाधिदेव सीताधि देवता ॥ ७ ॥
जयति बिधिबंदित चरण जयति बिधि जुवति वन्दिता ।
जयति अनिंदित सुजस जयति कीरति अनिंदिता ॥ ८ ॥
जय तारक तारिणी जीव भय हारिणि हर्ता ।
उत्पति पालन प्रलय जगत् कारिणि जय कर्ता ॥ ९ ॥
जय नित्या जय नित्य जयति आनंद प्रमोदा ।
जय चिद्रूपा चित्स्वरूप दंपती बिनोदा ॥ १० ॥

नमो अमित अवतार निजेक्षित जनहित कारी ।
परा शक्ति प्रणमामि जाहि गहि बहु बपुधारी ॥ ११ ॥
नमो अमित अवतार सिरोमणि सियाबिहारी ।
शक्ति सहित अवधेश जनक कृत जनक सुखारी ॥ १२ ॥
नमो नमो शिशुचरित सहानुज करन कृपाला ।
नमो भगिनि जुत बाल केलि अनुसरनि दयाला ॥ १३ ॥
नमो बिबाह बिनोद बिधायक सिय रघुनायक ।
चित्रकूट बन केलि करन सुर मुनि सुख दायक ॥ १४ ॥
जयति जुगल करुनानिधान नरलीला कारी ।
सहि दुख दुष्टन नास करन भक्तन भयहारी ॥ १५ ॥
जय सिय रघुबर लषन सतिय कपि यान बिराजी ।
अवधागत पुर जन जननी भरतादि निवाजी ॥ १६ ॥
जय बिजयी राजाधिराज सीतापति स्वामी ।
जय जुग सीताराम शरण जन मन बिश्रामी ॥ १७ ॥
जयति भरत सौमित्रि शत्रुहन हनुमत सेवित ।
चामर ब्यजन सुछत्र आदि धरि छबि लषि लोभित ॥१८॥
जय जय जय श्रीरामप्रिया श्रीसीता प्रिय जय ।
जय श्रीसीताकांत राम कांता करुणामय ॥ १९ ॥
जय श्रीसीता प्राणनाथ श्रीराम पियारी ।
जय रघुराज जीवनी जानकि जीवन भारी ॥ २० ॥
जय जानकी निवास जयति रघुराज निवासा ।
जय सीतासुख रास जयति रघुबर सुखरासा ॥ २१ ॥
जय जय जय श्रीरामबल्लभा जय सिय बल्लभ ।
जयति राम रसिका अजोनिजानायक सुल्लभ ॥ २२ ॥

जयति राम रमणी बिदेहजा रमण रसीले।
जय रघुबर भामिनी भूमिजा रसिक सुशीले॥२३॥
जय जय श्री रघुबीर मोहनी महिजा मोहन।
जय रघुबर प्रियतमा जयति सियप्रियतम सोहन॥२४॥
जय जय सीताराम जानकी राघवजय जय।
जय मैथिलि रघुनाथ स्याम स्यामा सोभामय॥२५॥
जय श्री रघुकुल केतु जयति निमि वंस पताका।
दशरथ जलनिधि चन्द्र जनक बारिधि बिधुराका॥२६॥
नमो नमो श्रीराम नौमि सिय पद अरबिंदा।
मुनिजन मानस भृङ्ग संग सेवित सानन्दा॥२७॥
नौमि दिव्यदामिनि सुदेह मिलि थिर घन स्यामा।
संजुत छवि शृङ्गार रसाधिप सरिस ललामा॥२८॥
नमों सुपट परिधान पीत स्यामल अभिरामा।
भूषण "मणि रसराम" जटित मोहन रति कामा॥२९॥
नमो जीव सुख दयन नयन राजीव बिसाला।
असितनलिन नयना नमामि छवि बसित रसाला॥३०॥
जय मिथिलाधिप सुतअजोध्याधिप सुत दम्पति।
जयति सुनयना सुख बिभूति कौशल्या सम्पति॥३१॥
जय सीरध्वज सुजसध्वजा दसरथ जस ध्वज बर।
जयति सुनयना कीर्ति कला कौसिला कीर्ति कर॥३२॥
जयति सख्य रस रूप जयति रस सखी स्वरूपा।
जयति भक्तबत्सल अनूप बत्सला अनूपा॥३३॥
जयति भरत शत्रुघ्न भ्रात लक्ष्मण सुख दाता।
जय मांडवि श्रुतिकीर्ति भगिनि उर्मिला सुख्याता॥३४॥

जय कांचनबन केलिरता जय बनप्रमोद रुचि ।
जै सरजू जलपान निरत प्रिय कमला जल सुचि ॥३५॥
जय जानकी अनन्य जयति रति रामानन्या ।
जै निज पतनी ब्रत सुधन्य पातिब्रत धन्या ॥ ३६ ॥
जय सीता सुचिगिरा अर्थ जल राम बीचि जय ।
जय दम्पति जुगनाम रूप समुझे एकहि मय ॥ ३७ ॥
जय जय श्रीरघुबीर बधू जय सिय बर सुन्दर ।
गहे कंज शर चाप बसे हनुमत हिय मन्दिर ॥ ३८ ॥
इनि "श्रीसीताम नाम मंजरी" ललामा ।
बिरचित "जन रस राम मणी" माला अभिरामा ॥ ३९ ॥
रसिक सुजन गल धारि लहैं सुखमा सुन धामा ।
सम माधुर्य्य परत्व नाम जुत जयतिं प्रणामा ॥ ४० ॥
दुख हर सुख कर पढ़त "नाम मंजरी" सनेमा ।
सुनत सुमति गति देनि भक्ति सीता पति प्रेमा ॥ ४१ ॥
जय जय सरयू अवध अवधवासी सब जीवा ।
जय जय श्री गुरु सन्त रामरति प्रद सुख सीवा ॥ ४२ ॥

दोहा ।

सीताराम शरण अधम जन भगवान प्रसाद ।
"युगल नाम यश मंजरी" छपवायो छकि स्वाद ॥

इति श्री रामरसरंगमणि कृत श्री सीतारामनाममंजरी सम्पूर्णा ।

श्रीअयोध्या प्रमोद बन, संबत् १९६१

श्रीजानकी प्राणवल्लभ जी के

चरण सरोज में श्री जनकपुर सुन्दरियों का प्रेम।

(कविवर पण्डित राम गया प्रसाद जी।)

(दो०) हिमतनया सुत हृदय धरि, सुमिरि उमा बृषकेतु।
प्रेम दशा बर्णन करौं, हरि-प्रेमिन के हेतु॥

(क०) आयो ऋतु शिशिर, न आयो श्याम! काहे सखि? सह्यो नहिं जात यह कष्ट मन मेरे ते। पड़े जब पाला, सो तो लागे मोहि भाला ऐसो, बिनु जानकीश तन कांपत सबेरे ते॥ भयो सोइ हाल, मानो परी मीन जाल बीच, रहै जिमि दुःखी मोर बिना घन घेरे ते। एक नहीं श्याम, दूजे कामहूं सतावत है, सुने ऋतु नाम तनु उड़ै बायु प्रेरे ते॥ १॥

(सो०) शिशिर गयो सखि बीत, अब बसन्त करिहै कहा?
"नेति नेति" श्रुति गीत, अन्त पूछिये काहि सन॥

(क०) उतै गयो रघुराज!! इतै आयो ऋतुराज, संग काम को समाज, मोहि मारत है बान। उतै श्याम गये भूल, इतै डाहत त्रिशूल, तन भयो जिमि तूल, बिरहानल समान॥ आई उत सौं न पाती, इतै दहै नित छाती, कष्ट होत दिन राती मोहि परत न जान। उतै मोहे सियाकन्त, इतै होत प्राण अन्त, सखी! आयो का बसन्त, बिधि भेज्यौ दुःख खान॥ २॥

(दो०) सखि! बसन्त को अन्त है, ग्रीषम पहुँच्यो आय।
अजहूं सियपिय ना मिले, व्यथा कौन बिधि जाय॥

(सवैया) ग्रीषम के ऋतु में नित ही, गिरिनयनन ते सखि! नीर बहैं। सर सूखि गये, द्रुम मूर्च्छि परे, बिरहिन गृह में कहु कैसे रहैं॥ बहै बाव तो घाव लगै तन में, औ सुधाकर देखि कै देह दहैं। अजहूं नहिं प्रान पयान करैं! इतनो दुख दारुन नित्य सहैं॥ ३॥

(सो०) ग्रीषम कीनो गौन, वर्षा ऋतु आई अवनि।
लगै भयावन भौन, श्री जानकिजीवन बिना॥

(क०) ग्रीषम गवन कीन्हो, बरषा अवनि आयो, लागत भयावन भवन बीच भारी है। सुने कोइल की कूक, हिया होत दुई टूक, सखि! उठे घटा कारी, मोहि लागत कटारी है॥ मोर करै शोर, घन घोर लखि बिपिन में, ताते आलि! हिया बीच उठे चिनगारी है। रैन अंधियारी तें सहमि सुकुमारी कहै, काहे? दनुजारी मोहि निपट बिसारी है॥ ४॥ सावन न आयो, विधि तावन पठायो मोहि, बिना मनभावन मैं कौन काज करिहौं। "सरयू" दुकूलैं में हिंडोल कैसे झूलैं? यह होत हिय शूलैं! कहु कैसे के उबरिहौं॥ मीन जल हीन ह्वै रहत नित दीन जैसे, कहो अब ताहि बिधि निशिदिन जरिहौं। हे रे मेरी आली! हाली प्यारे को दिखाव मोहि; नाहिं तो भुजाली आज हिया बीच मरिहौं॥ ५॥

(सवैया) लखि कारी घटा, चढ़ि जात अटा, खन

आवत आंगन में अकुलाई। खन द्वार पै जाइ पुकारत हैं कतहूं नहिं देखत हैं रघुराई। दुहुं नयनन तें नित नीर बहैं अब, मानहु मेघ मघा झरिलाई। बिनु प्रानपिया, जिया व्याकुल होत, यथा खग पंख बिना पछताई ॥ ६ ॥ निस पेखत ही मन होत यहै, बिस खाउं, पै आनि कै देत न कोई। सपनेउं कहूं भेंट जो होतै, सखी! कहतिउं समुझाई यथा बिधि रोई ॥ बिधना कर काह? बिगारे रहिउं, इतना दुख दारुन देन है जोई। तड़पै करि आह कहै नितही, बरसात गयो बर साथ न सोई ॥ ७ ॥

(दो०) बरषा को करषा मिट्यौ, मृगनयनी अकुलाय।
दरद अधिक नन में बढ़्यौ, सखी! शरद ऋतु पाय॥

(क०) सर्द ऋतु आई, महि मध्य छवि छाई, जग अति हरषाई, सुधा स्रवै उडुराई है। सुधा केर बुंद, बिष बुंद ते सरस, सखि! होत दुःख द्वन्द मोहि बिना रघुराई है ॥ कहां जाउं कहा करूं? कहत न बनै कछु कहौ सखि! काहे? हरि निपट भुलाई है। एती कठिनाई ऋतु केर लखि पाई, अब कौने काज? नयन प्राण राख्यौ-बिलमाई-है ॥ ८ ॥

(दो०) शरद गरद मोहि करि गयो, जानकि-बर बिनु आज
दीन कहत मन धीर धरु, तोहि मिलिहैं रघुराज

(सवैया) हे हिम! काहे? सतावसि मोहि, सदा बिनवौं कर जोरि के तोही। करु सोई प्रसङ्ग वचे मम

अङ्ग, अनङ्ग तरङ्ग है डाहत मोही ॥ निशि कारी भयानक भारी लगै भभरौं सुनि चातक बोलत जोही। तोहि पूजि सप्रेम निहाल करौं, जबहीं सियकन्त दिखाय दै मोही ॥ ९ ॥

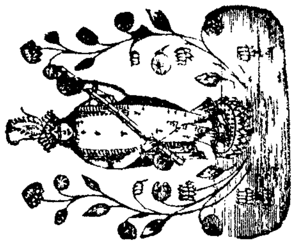
(सो०) षट ऋतु बारह मास, मोहि तलफत बीत्यौ सखी।
अजहुं न पूजो आस, रूपराशि रघुबीर बिनु ॥

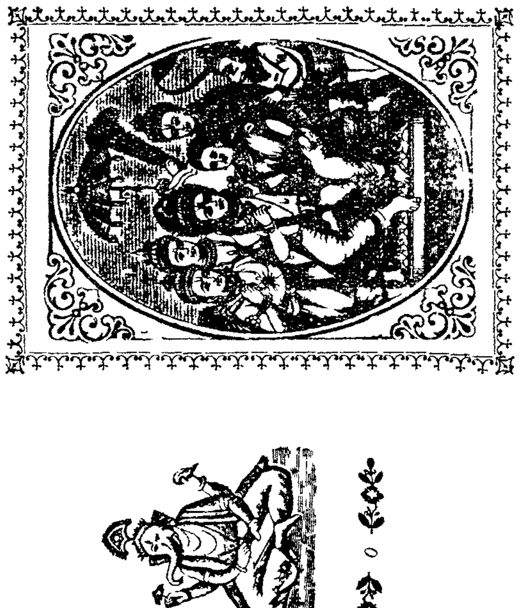
(क०) आयो मलमास पिया मिलन की आस, सखी! बीती सब त्रास, हिया मोद अति छायो है। मिल्यौ जानकीश, जापै कोटि काम वारि डारौं, ऐसो सुख भयो मानो रंक धन पायो है॥ अंधहि बहोरि नेत्र पाइबे को हर्ष जेतो, ताते सुख अधिक अधिक अधिकायो है। सखिन ने पीय पाय, कीनो है निहाल, "दीन"-भाल को लिख्यौ कुअंक बिधिको मिटायो है ॥ १० ॥

(दो०) "मिथिला" युवतिन प्रीति की, धन्य कहत ब्रह्माद।
यांचत दीन सप्रेम तिन कृपाकटाक्ष प्रसाद ॥



श्री भक्तिसुधाबिन्दु स्वाद ।







श्रीकाशी चन्द्रप्रभा प्रेस् १९६२

श्रीसीताराम



सौभाग्यकला (रूपकला), प्रमोदवन कुटिया श्री अयोध्याजी

सीताराम शरण भगवान् प्रसाद

श्रीभक्तमालतिलककार ॥

कलिसम्वत् ५००६ चन्द्रप्रभा यन्त्रालय काशी। सम्वत १९६२

॥ श्रीः ॥

ॐ नमोभगवते गुरवे हनुमते श्रीरामदूताय मम सर्वविघ्नविनाशकाय श्रीसीतारामभक्ति प्रदाय ॥

(दोहा)

जय श्रीसियपिय-दूत कपि, महाबीर हनुमान।
"सौभाग्या" पितु मातु हितु रक्षक गुरुभगवान ॥१॥
सियपिय अनुप सुभाव, व्रत, श्रीभक्तन को टेक।
वरनि यथामति तव कृपा, भक्ति रहस्य अनेक ॥२॥
श्री कर कंजन मांहिं सोइ अरपौं मन बच काय।
कृपासिन्धु करुणायतन, सो लीजे अपनाय ॥३॥ पुनि
विनवौं प्रभु जोरि कर, मोहि कृपा करि देहु। श्री-
सियसियपिय पद कमल अविरल अमल सनेहु ॥४॥
नमो नमो श्रीमारुति जनरक्षक बलवान। महा-
बीर श्रीअंजनी-नन्दन, बुद्धिनिधान ॥५॥
श्रीअयोध्याप्रमोदवन } सौभाग्यकला (रूपकला)

(दो०) भक्ति-ज्ञान-निजधर्म-रत, शास्त्री श्री मणिराम।
धन्यवाद तेहि शत सहस, सहित सुप्रेम प्रणाम ॥
मार्गशीर्ष शुक्ल १९६२ } दीन सीतारामशरणभगवान्प्रसाद

॥ श्रीः ॥

काशीकान्यकुब्जसभातः
समालोचना

तथा

धन्यवादः

श्री युत-महामान्य-धन्यतम-सौजन्यमूर्तिभिः श्री-सीतारामशरणै भगवत्प्रसादैः श्री १००८ नाभास्वामिकृत-भक्तमालग्रन्थस्य तदुपरि श्री १०८ प्रियादासप्रणीतटीकाप्रबन्धस्यापि निर्मितो भक्तिसुधाबिन्दुस्वादनामको व्याख्यानरूपः संदर्भो भक्तिरसिकजनानां चेतस्सु परमाह्लादमुत्पादयति ।

प्रायश्चैतादृशी सरलता सरसता च व्याख्यानग्रन्थेषु न क्वापि दृग्गोचरीभूता, प्रशंसनीयः खलु व्याख्यातुर्महाशयस्य परिश्रमः किंच वहुस्थलेषु प्रियादासेन यः कथाभागो न समासादितः, सोपि भगवद्भक्तिपरायणैर्भगवत्प्रसादैर्महता परिश्रमेणान्विष्य परिपूर्तिमापितः ॥

तथाच अस्य ग्रन्थस्य पूर्वोभागस्तिलककर्त्रा प्रेषितस्तत्समालोचनायां सभातो यानि दूषणानि परिमार्ष्टुं विज्ञप्तिः कृता तद्विषये यथाशक्यं यतते ग्रन्थकारः ॥

समायातद्वितीयभागे ऋष्यशृङ्ग (शृङ्गीऋषि) वृत्तान्तं समीक्ष्यापूर्वतरं साश्चर्या भवन्ति सभ्याः ॥

एवंच २१७ पृष्ठे स्वपचवाल्मीकेः कथापि भगवद्भक्तिं सुदृढं दृढयति ॥ २०८ पृष्ठे गोपिकावृन्दस्य भगवच्चरणारविन्दे परमप्रेमबोधिकां गीतिं दृष्ट्वा प्रस्तरमयहृदयस्यापि द्रवता भवति । इत्थमनेकगुणगणगुम्फितोयं ग्रन्थःसु भक्तजनानां परमोपादेयः ॥

भाषापि प्रसंशनीया, पुष्टचिक्कणपत्राणामुपरि मुद्रण मिति शम् ।

श्रीकाशीजी टेढ़ीनीम
ता: १७ मार्च सन् १९०९

(हस्ताक्षर) काशीनाथ
मंत्री, कान्यकुब्ज सभा

(हस्ताक्षर) *Mani Ram Shastri.*

सहकारी मंत्री, का० स०

पण्डित श्री ५ रामवल्लभाशरण जी,

तथा

पण्डित श्री ५ रामनारायणदास जी ।

(श्रीअयोध्याजी, १४ नवेम्बर १९०५)

"भक्तिसुधाबिन्दुस्वादनामक व्याख्यारूप सन्दर्भस्य काशी कान्यकुब्ज सभाया या सुष्ठुतरा समालोचनाऽस्ति, तद्विषये श्रीपण्डित रामवल्लभाशरणस्य श्रीपण्डित रामनारायणदासस्य च सम्मतिरस्ति ॥"

श्री काशी "भारतजीवन"।

(८ अगस्त १९०४)

"श्रीभक्तमाल। टीका, तिलक सहित।
श्रीसीतारामशरणभगवान्प्रसाद विरचित।
छपाई सफ़ाई बहुत अच्छी है। विशेषता यह है कि पुस्तक शुद्धता पूर्वक छपी है॥"

कविवर श्रीसर्बरीश जी के कृपापात्र

पंडित श्री रामाधारी पाण्डेय, तथा श्री राधामोहन सहाय

(सोरठा)

"भक्तमाल" सुखधाम, मोहबिनाशन अघहरन।
रीझत सीताराम, प्रेम सहित नित पढ़त ही॥

(कवित्त)

अमिय सु "भक्तमाल," गुरुनिदेश 'मन्द्राचल,' वेद औ पुराण अति अम्बुध अपार है। कृपासिन्धु नाभा स्वामी मथिकै प्रगट कियो, जासो साधु भक्त औ जगत उपकार है॥ प्रियादास बाक ससि सोभित सुछन्द सुचि, 'भक्तिरसबोधिनी' सु रैन राका सार है। 'बालक,' चकोरनि "सौभाग्यकला" जोहिं ताहि, "भक्ति-सुधाबिन्दु स्वाद" रच्यो मन हार है॥

गोरखपूर, १५-११-१९०५ } सा० वि० श० रामाधारी पाण्डेय,
सी० रा० राधामोहन सहाय (बालक)

श्रीगणेशाय नमः ।

ॐ नमो भगवते हनुमते श्रीरामदूताय ॥

श्रीमतेरामानन्दाय नमः ।

श्रीभक्तमाल विषयोपक्रमणिका ।

(कवित)

"भक्तमाल" ग्रन्थ पन्थ जान हरि जानबे को, भानबे को भर्म, कर्म बहु भांति छूटही। सब मत रत भक्ति भाव गाव कहि सत मत अनुसार तें कुमत सब टूटही॥ मूल को बखान सो कहान "नाभा जू" सयान आभा सू अपार अर्थ रंचहू न खूटही। "प्रिया दास" टीका को प्रकास कियो लियो जैसे हाटकालंकार पर कूदन को बूटही॥१॥

(दोहा) चातक भक्तन को रह्यो, जापर प्रेम अपार।
'सुधाबिन्दु' सोइ स्वाति जल, 'स्वाद' लेहु सुखसार॥



श्रीगणेशायनमः । श्रीहनुमते नमः ॥

श्रीभक्तिसुधाविन्दु स्वाद के तीसरे भाग का शुद्धिपत्र ।

☞ इस 'शुद्धिपत्र' के अनुसार इसको पहिले, अवश्य, शुद्ध कर लेते जाइये, तब अशुद्धिसंशोधन के अनन्तर पुस्तक को पढ़ा कीजिये ॥

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३८०		५श्रीवोपदेवजी	४ श्रीवोपदेवजी
		४श्रीशठकोपजी	५ श्रीशठकोपजी (श्रीपरांकुशजीप्रथम)
		९ श्रीपरांकुशमुनि १० श्रीयामुनाचार्य्यजी	९श्रीयामुनाचार्य्यजी
		११ महापूर्णा चार्य्य	१०श्रीमहापूर्णाचार्य्यजी (श्रीपरांकुशजी द्वितीय
		१२स्वामीश्रीरामानुज	११स्वामीश्रीरामानुजजी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४०१	१४	मयो	गयो
४०२	१७	लुटाए	लुटाइ
४०३	२१	सब कोई	सब ने
४०७	२	कृति	कृत
४०७	४	सुरधुनि	सुरधुनी
४०९	१८	पर	पै
४१४	८	श्रीयानन्द जी	श्रीहरियानन्द जी (श्रीप्रधानानन्द जी)
४३१		९परांकुश मुनिद्वितिय	९श्रीयामुनाचार्य्य जी
		१० श्रीयामुनाचार्य्य	१०श्रीमहापूर्णाचार्य्यजी (श्रीपरांकुशजीद्वितीय)
		११ महापूर्णाचार्य्यजी १२स्वामीश्रीरामानुज	११स्वामीश्रीरामानुजजी
		१३ इत्यादि	१२ इत्यादि
४३६	२१	स्वानी	स्वामी
४३७	१७	मारे	मारौं
४३७	१९	११६;५१३	११७; ५१२

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४५६	८	प्राप्त	प्रात
४६७	१०	गुरु राज	गुरु, राजा
४६७	२१	यो	यों
४६८	१	प्रचार; डारी	प्रचारि; डारि
४७२	१८	शिष्य	शिष्य (लघुगुरुभाई)
४७३	१३	पोखि जन	पोखी उन
४७९	१३	।	,
४८२	१	बालम !	बालक !
४८२	११	मुक्तिनास्ति सत्य	मुक्तिर्नास्ति सत्यं
४८७	१४	पृष्ट ३७२	पृष्ट ४७२
४९१	१३	द्वितय	द्वितीय
४९८	१४	पर, चैप्रभुता	परचै, प्रभुता
५०१	१७	तिहुँ	तेहिँ
५०१	१८	सबन	सुनन
५०७	४	तियाकिया,	तिया, किया
५१०	१५	वही	यही
५१४	१	हिले	ही ले

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५१५	११	चाहो	चाहीं
५१५	२०	वास्ते	लिये
५१६	१४	बड़ो	बड़े
५१७	२३	कोहु	कोऊ
५१८	५	कहि	कही
५१८	६	लेखि	लखि
५२३	२२	मिले	मिलैं
५२६	९।१३	पाय	पाए
५३३	५	४४०	४०
५३३	२१	ज्ञानी,	ज्ञानी)
५३६	१	विन्दु माधवजी	विन्दुमाधवजी नें
५४१	१७	लगव	लगावै
५४२	४	कि	तो

॥ श्रीः ॥

ॐ नमो भगवते हनुमते श्रीरामदूताय ।

श्रीभक्तमाल ।

सत्ययुग, त्रेता, द्वापर पर्य्यन्त—

मूल दोहे (सत्रह में से)	...	...	४
मूल छप्पै (१९५ में से)	...	...	२३
मूल (१७+१९५+१=२१३ में से) ...		...	२७
टीका । कवित्त (६२९ में से) ...		...	१०५
८४२ (=२१३+६२९) में से	...	...	१३२
भक्त (पौने तीन सौ) ...	...	...	२७५
न्योछावर ...	...	(सवादोरुपए)	२।)
पृष्ट ...	...	... ...	३७३
फ़र्मा ...	...	... ...	४७

Registered

Under Act XXV of 1867

(Office of the Registrar & Superintendent,

Govt. Book Depot. U. P , Allahabad)—

(I.) No. 682 Dated the 1st July 1905

(II.) No 1468 Dated the 6th December 1904.

(कलियुग भक्तावली आरम्भ, पृष्ट ३७५ वें से)

श्रीअयोध्याजी, अगहन, सम्वत १९६१

॥ श्रीगणेशायनमः । श्रीहनुमते नमः ॥

छप्पै	भक्त
७	१३
८	१६
९	२६
१०	२०
११	२०
१२	२९
१३	१०
१६	२१
१७	१८
१८	१८
१९	८
२०	१८
२१	९
२२	१६
२३	१६
२४	१
२६	२
२७	८
सब=२७५	

श्रीमतेरामानन्दाय नमः ।

गोस्वामी श्री१०८ नाभा जी महाराज ने सत्ययुग त्रेता द्वापर पर्य्यन्त के भक्त, २७ (सत्ताईसवें) मूल (२३ वें छप्पै) तक वर्णन किये हैं; इसमें २७५ (पौनेतीन-सौ) भक्तों के नाम हैं।

किस किस मूल (छप्पय) में कितने कितने भक्तों की चर्चा है, सोही इस सूचीयन्त्र में देख लीजिये, ग्रन्थमें प्रत्येक छन्द पर अंक तो लगे ही हैं।

सब भक्तों के नाम "सूचीपत्र" में तो लिखे जा चुके ही हैं, तथापि वर्णमाला के (अकारादि) क्रम से भी सब नामों की पूरी सूची श्रीसीतारामकृपासे दी-जावेगी।

"भक्तिसुधाबिन्दु स्वाद" के ३७३ पृष्ठों में, इन्हीं के चरित्र वर्णित हैं।

पृष्ठ (३७४ वां तो यही है) ३७५ वें से कलियुग के भक्त श्रीसीतारामकृपासे गाए जावेंगे॥

श्रीअयोध्या जी
अगहनसुदी पंचमी, १९६१ } सीतारामशरण भगवान्प्रसाद

श्री सीताराम

श्रीहनुमते नमः

श्रीमतेरामानुजायनमः। श्रीमतेरामानन्दायनमः।

श्रीभक्तमाल सटीक।

(कलियुग भक्तावली।)

(१/८ ३/४ ३/२) छप्पै।

चौबीस प्रथम हरि बपु धरे, त्यों चतु-व्यूह कलियुग प्रगट॥ "श्रीरामानुज[१]" उदार, सुधानिधि, अवनि कल्पतरु। "विष्णु स्वामि[२]" बोहित्य सिन्धुसंसार पारकरु। "मध्वाचारज[३]" मेघ भक्ति सर

ऊसर भरिया। "निम्बादित्य[४]" आदित्य कुहर अज्ञान जु हरिया॥ जनम करम भागवत धरम सम्प्रदाय थापी अघट। चौबीस प्रथम हरि बपु धरे, त्यों चतुर्व्यूह कलियुग प्रगट॥ २४॥ (२८/२१३)

"बपुधरे"=अवतारलिये, अवतीर्ण हुए, प्रगटे॥ "थापी"=स्थापित किया।

(१/८ ३/४ ४/२) दोहा।

"रमा" पद्धति, रामानुज; विष्णु स्वामि, "त्रिपुरारि"। निम्बादित्य, "सनाकादिका;" मधुकर, गुरु "मुखचारि" ॥५॥* (२९)

* चौथा दोहा मूल पृष्ठ ४८ में है; और पांचवां दोहा (वा उन्तीसवां मूल) यही दोहा है, जिसकी चरचा ५१ वें पृष्ठ (पंक्ति ७।८) में हुई है॥

चारो सम्प्रदाय।

१	श्री "श्री" सम्प्रदाय	श्रीरामानुज स्वामी सं०
२	श्री शिव सम्प्रदाय	श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदाय
३	श्रीसनकादिक सम्प्रदाय	श्रीनिम्बार्क स्वामी सं०
४	श्री ब्रह्म सम्प्रदाय	श्रीमध्वाचार्य सम्प्र०

वार्त्तिक तिलक।

(१) यतीन्द्र स्वामी श्री ६ रामानुज महाराज जी भाष्यकार, बड़े ही उदार, श्रीसीतारामभक्ति रूपी अमृत के सागर, कल्पवृक्ष के समान जगत में सर्वकामप्रद;

(२) श्रीविष्णु स्वामी जी महाराज, संसार समुद्र से पार करनेवाले दीर्घ नाव (जहाज़) ;

(३) श्रीमध्वाचार्य्यजी महाराज, ऊसरके सूखेसर समान जीवों के हृदय में श्री भक्ति रूपी जल वर्षा-करके भरनेवाले घन; और

(४) श्रीनिम्बार्कजी महाराज, जनों के अज्ञान रूपी कुहेसे को नाश करके उनके हृदयमें ज्ञान तथा भक्ति प्रकाश करनेवाले सूर्य्य;

भागवत जन्म, भागवत कर्म, भागवत धर्म, तथा भगवतधर्म्मों के चारो सम्प्रदाय, आपही चारोके स्थापित कियेहुए अचल हैं।

जैसे भगवान् पहिले चौबीस रूपसे अवतरे, वैसेही भगवतही कलियुगमें इन चारो आचार्य्य रूप प्रगट हो चारो भागवत सम्प्रदाय स्थापन किये हैं॥

स्वामी श्रीरामानुज की पद्धति, श्रीलक्ष्मी जी की और श्रीविष्णु स्वामी जी की पद्धति श्रीशिव जी की है। श्रीनिम्बार्क पद्धति के आचार्य्य श्रीसनकादिक हैं; और, श्रीमध्वाचार्य्य जी का मार्ग, श्री गुरु ब्रह्मा जी की पद्धति है॥

श्रीनिम्बादित्य जी ।

(१/८ ३/४ ५/२) । टीका कवित्त ।

निंबादित्य नाम जाते भयो ग्रभिराम कथा, ग्रायो एक दंडी ग्राम, न्योतो करी, ग्राए हैं । पाक को ग्रबार भई, संध्या मानिलई जती, "रतीहूं न पाऊँ" वेद वचन सुनाए हैं ॥ ग्रांगन में नींब, तापै ग्रादित दिखायो वाहि, भोजन करायो, पाछे निशि चिन्ह पाए हैं । प्रगट प्रभाव देखि, जान्यो भक्ति भाव जग, दांव पाइ, नांव पर्यो, हर्यो मन, गाए हैं ॥ १०६ ॥ (६२९–५२३)

"दाव"=पेच, अवसर, अवकाश, सन्धि, सुगमता । रत्ती=१/८ माशा

वार्तिक तिलक ।

भागवत धर्मप्रचारक स्वामी श्री निम्बादित्य (निम्बार्क) जी के ग्राम में एक समय एक दंडी स्वामी ग्राए; आपने उनका न्योता किया, संन्यासीजी इनके स्थानमें ग्राए । शिष्टाचार तथा रसोई में संध्या (वरंच ग्रधिक विलम्ब) होगई; यतीजी ने वेदवचन का प्रमाण देकर कहा कि "रात्रि में रतीमात्र भी मैं पाता नहीं हूं" ।

यह सुन, ग्रापको दया ग्राई कि 'मेरेराम जी के हां ग्रतिथि उपवास करे, (ग्रौर मेरीही ग्रसावधानता से!) यह विचारकर ग्रापने कहा कि इस ग्रांगन में जो "निम्ब" का वृक्ष है, उस्पर देखिये कि ग्रभी ("ग्रर्क" वा

"आदित्य" अर्थात्) सूर्य्य देव विराजते हैं, और ऐसाही दिखाके दंडी जी को सन्तुष्टता पूर्वक प्रसाद पवादिया। पीछे, (दो तीन घड़ी) रात्रिके चिन्ह पाकर, दंडीजी ने आपका प्रभाव प्रगट देखा; तथा जगतमें सर्वत्र इनकी भक्तिभाव की दाव एवं महिमा प्रख्यात होगई, और इसीसे आपका यह नाम (निम्बार्क) विख्यात हुआ।

इसीसे मेरा मन हर गया, और मैने श्रद्धा पूर्वक आपका यश गानकिया॥

आप, दक्षिणमें "श्रीगोदावरीगंगा" के तट "मुँगेर" नाम के ग्राम के वासी महाराष्ट्र ब्राह्मण "अरुण"जी और माता "जयन्ती जी" के, पुत्र हैं।

भगवान् ने "श्रीहंस" (पृष्ठ ६१) अवतार लेके श्रीसनकादिक को उपदेशकिया और श्रीसनकादिक से श्री नारद जी ने पाया, जिस्से यह सम्प्रदाय "सनकादिक सम्प्रदाय" कहलाता है; उसीको स्वामीजी ने श्रीनारद जी से पाके, प्रचलित किया; जिस्से वही, श्रीनिम्बार्क (निम्बादित्य) सम्प्रदाय के नाम से विख्यात हुवा। गोलोक बासी श्रीकृष्ण भगवान् की माधुर्य्य उपासना, इस संप्रदाय की मुख्य बात है। आपकी गादी (१) अरुण और (२) सलेमाबाद इत्यादिक नगरों में हैं॥ निम्बार्क सम्प्रदाय तथा श्री श्रीसम्प्रदाय की "श्रीगुरु-परम्परा" आगे देखिये—

स्वामी श्रीरामानुज
|
महापूर्णाचार्य्य
|
श्रीयामुनाचार्य्य
|
श्रीपरांकुश मुनि
|
श्रीराममिश्र
|
श्रीपुण्डरीकाक्ष
|
श्रीनाथ मुनि
|
श्रीवोपदेवजी
|
श्रीशठकोपजी
|
श्रीविष्वकसेनजी
|
श्रीलक्ष्मीजी
|
श्रीमन्नारायण भगवान्

श्रीनिम्बार्क स्वामी
|
श्रीनारदजी
|
श्रीसनकादिक
|
श्रीहंसभगवान्

स्वामी अनन्तश्री रामानुज जी।

(१/८ ३/४ ६/२) छप्पै।

सम्प्रदाइ शिरोमणि "सिन्धुजा[२]" रच्यो भक्ति वित्तान॥ "विष्वकसेन[३]" मुनिवर्य्य, सुपुनि "सठकोप[४]" प्रनीता। "वोपदेव" भागवत लुप्त उधर्‍यो नवनीता॥ मङ्गल मुनि "श्रीनाथ[५]" "पुण्डरीकाक्ष[६]" परम जस। "राम मिश्र[७]" रस रासि; प्रगट परताप "परांकुस"॥ "यामुन[८]," मुनि[९] "रामानुज[१०]" तिमिर हरन उदय भान। सम्प्रदाइ शिरोमणि सिन्धुजा रच्यो भक्ति वित्तान॥ २५॥ (१०/२१३)

(१/८ ३/४ ७/२) छप्पै।

सहस्र आस्य उपदेश करि, जगत उधारन जतन कियो॥ गोपुर ह्वै आरूढ़, ऊंच स्वर, मन्त्र उचार्‍यो। सूते नर परे जागि, बहत्तरि श्रवणनि धार्‍यो॥ तितनेई गुरुदेव पधति भई न्यारी न्यारी। कुरु-

तारक शिष्य प्रथम भक्ति बपु मंगलकारी ॥ कृपणपाल करुणा समुद्र, "रामानुज" सम नहिँ बियो । सहस्र आस्य उपदेश करि, जगत उधारन जतन कियो ॥२६॥ ($\frac{३१}{२१३}$)

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीसिन्धुजी (नाम श्रीलक्ष्मी) महारानीजी का सम्प्रदाय, सब सम्प्रदायोंका शिरोमणि, और संसारताप से बचाने के निमित्त भक्ति के मण्डप का चँदोत्र्आ रचा हुआ है। श्रीश्रीजी महारानीसे, श्रीविष्वक्सेन जी भगवतपार्षद; फिर उनसे पुण्यपुंज मुनिवर्य्य नम्रता-नीतिशील "श्रीशठकोप" जी; श्री "वोपदेव" जी कि जिनने श्रीमद्भागवत रूपी लुप्त मक्खन का उद्धार किया; मंगल स्वरूप "श्रीनाथमुनि" जी; तथा परम यशस्वी श्री "पुण्डरीकाक्ष" जी; भक्तिरस के राशि श्री "राममिश्र" जी; श्रीपरांकुश जी, कि जिनका प्रताप प्रगट है; स्वामी श्री "यामुनाचार्य्य" जी; तथा भाष्यकार स्वामी अनन्तश्री रामानुज जी, कि जो संसार के मोहान्धकार हरनेवाले सूर्य्य उदय हुए ॥

ऊंचे गोपुर (बृहद्वारकोइल) पर चढ़के, अतिउच्चस्वरसे, श्रीमन्त्रजी का उच्चारण किया, सोये हुये लोग

जाग पड़े; बहत्तर ने अपने अपने श्रवण में रामकृपा से धारण किया; इसीसे उतनी ही अर्थात् बहत्तर न्यारी न्यारी पद्धतियां गुरुदेव की हुईं; जिन में प्रथम शिष्य श्रीकुरुतारक (श्रीकुरेश जी) को, मंगलकारी श्री भक्ति प्रेम रूप ही जानिये। दीनपालक और करुणा के सागर, स्वामी श्री १०८ "रामानुज" जी के सरिस दूसरा कोई नहीं। आपने सहस्र मुखसे उपदेश करके जगतके उद्धारार्थ उपाय (प्रयत्न) किया॥

(१३६/८३६) टीका। कवित्त।

आस्य सो बदन नाम, सहस हजार मुख, शेष अवतार जानो, वही सुधि आई है। गुरु उपदेशि मन्त्र, कह्यो "नीके राख्यो" अन्त, जपतहि श्याम जू ने मूरति दिखाई है॥ करुणानिधान कही "सब भगवत पावैं" चढ़ि दरवाजे सो पुकास्यो धुनि छाई है। सनि शिष्य लियो यों बहत्तर हि सिद्ध भए नए भक्ति चोज, यह रीति लैके गाई है॥ १०७॥ (६२९-५२२)

"आस्य"=मुँह, बदन; "सहस=१०००

वार्तिक तिलक।

आस्य नाम वदन (मुँह), सहस नाम सहस्र (१०००) यह जान लेना चाहिये कि आप सहस्र मुख श्री शेष के अवतार हैं। श्रीगुरु "गोष्ठी पूर्णाचार्य्य" जी ने आपको मन्त्र देकर आज्ञा की कि "बड़े यत्न से अन्तःकरण में गुप्त तथा नीके रक्खो"।

जपते ही श्रीभगवान् श्याम सुन्दर श्रीरामचन्द्र ने दर्शन दिये। मन्त्र का यह प्रभाव देख, आप की करुणा का लहर उठा, जीवों पर दया आई, जी में कहा कि सब लोग प्रभु को जिस्से पावें सो मन्त्र सबको सुना देना चाहिये। यों विचारकर, रातके समय गोपुर (फाटक) पर चढ़गए और वहां ही से चिल्लाके मन्त्रोच्चारण किया; अपूर्व ध्वनि छागई॥

यह शिक्षा पा, ७२ बहत्तर सिद्ध होगए। "जिसे चाहे पिया सोती जगावे"॥ प्रत्येक की पद्धति न्यारी न्यारी हुई। यह चोज, यह नई रीति गाने योग्य है कि उधर परहित के लिये आपने श्रीगुरुआज्ञा-उल्लंघन पापभार अपने सीस पर धर लिया, और इधर भावग्राही गुरु तथा भगवान् ने इस्से अपनी अतिशय प्रसन्नता प्रगट की॥

(चौ०) "रहति न प्रभुचित चूक किये की।
करत सुरति सौ बार हिये की॥"

(१३९/८४२) टीका कवित्त।

गए "नीलाचल" जगन्नाथ जू के देखिबे कों, देख्यो अनाचार, सब पंडा दूरि किये हैं। संग लै हजार शिष्य रंग भरि सेवा करैं, धरैं हिये भाव गूढ़ दरसाई दिये हैं। बोले प्रभु "वेई आवैं, करे अंगीकार मैं तो; प्यार ही को लेत, कभूं औगुन न लिये हैं"। तऊ दृढ़ कीनी; फिरि कही, नहीं कान दीनी; लीनी वेद बाणी

विधि कैसे जात छिये हैं ॥ १०८ ॥ (६२९—५२१)

"नीलाचल"=नीलगिरि, उड़ैसा प्रदेश में, जिसपर श्रीजगन्नाथजी का मन्दिर है। "रंगभरि"=प्रेम में पूर्ण होके, पूरी प्रीति से, स्नेह में भरके। "करे"=किये, कर चुके। "नहिं कान दीनी"=ध्यान नहीं दिया, उसके अनुसार चले नहीं। "छिये जात हैं"=क्षय वा नष्ट किये जाते हैं।

वार्तिक तिलक।

श्रीजगन्नाथ जी के दर्शन के लिये (उड़ैसा, पुरुषोत्तम पुरी में) एक बेर आप सहस्र शिष्यों सहित गए वहां धोनेमाँजने तथा बरतन चौका आदिक विचार आचार का बड़ा अभाव पण्डों में देखकर, अनाचार को छुड़ाना चाहा; पण्डों को सेवा से अलग करके बड़े प्रेमसे पूजा सेवा करने लगे; महानुभावों के भाव बड़े गूढ़ होते हैं, उनका कहनाही क्या है।

परन्तु सीधे पंडे दुखी हुए।

नेम से अधिक प्रेम के चाहनेवाले प्रभुने स्वप्नमें दर्शन देकर कहा कि "मैं पंडों को अंगीकार कर चुकाहूं मैं कदापि दोषों पर दृष्टि नहीं देता, प्रेम ही को ग्रहण किया करताहूं; वेही लोग आकर सेवा करें"।

तब भी, आप अपने आचार की रीति में दृढ़ही रहे। श्रीजगन्नाथ जी ने पुनः पुनः आज्ञा की, पर आपने एक न सुनी; बरन प्रार्थना की कि प्रभो! देखिये आपकी सेवा-विधि बेदमें कैसी वर्णित है, भला मैं उन्हें क्योंकर छोड़सकताहूं॥

(१४०/८४२) टीका कवित्त।

जोरावर भक्त सों बसाइ नहीं, कही किती, रती हू न लावैं मन चोज दरसायो है। गरुड़ को आज्ञा दई, सोई मानि लई उन, शिष्यनि समेत निज देश छोड़ि आयो है॥ जागि कै निहारे, ठौर और ही, मगन भए, दए यें प्रगट करि गूढ़ भाव पायो है। वेई सब सेवा करैं, श्याम मन सदा हरैं, धरैं सांचो प्रेम, हिय प्रभु जू दिखायो है॥ १०१॥ (६२९–५२०)

"ज़ोरावर्"=बलवन्त, बली, प्रबल। "रती"=,रत्ती, एक माशेका $\frac{1}{8}$ (आठवां) भाग, अति अल्प, कुछ भी नहीं। "किती"=कितनीही।

वार्तिक तिलक।

प्रेमयुक्तनेम का बल भी कैसा भारी है, कि जिस्से स्वयं प्रभु भी हार मान जाते हैं। प्रभुने कितनीही कही, परन्तु आपके प्रेमभरे हृदय में एक भी नलगी।

अन्ततः, श्रीजगन्नाथ जी ने श्रीगरुड़ जी को आज्ञा दी कि "इनको सब सेवकों सहित रात्रिमें श्रीरंगपुरी पहुँचा आओ"। श्रीखगेशजी ने वैसाही किया। नींद टूटी तो अपने सब को श्रीजगन्नाथपुरी में न पाकर श्रीरङ्गधाम में देख के, शीलसंकोचसिन्धु प्रभु के स्वभाव तथा गूढ़ भाव को देख कर, आप प्रेम में डूब गए।

वहां, वेही पंडा लोग फिर सेवापूजा करनेलगे। सेवा के बिरहवियोग के अनन्तर जो पुनः सेवाकी प्राप्ति हुई, इस्से उनकी प्रीति दूनी होगई। प्रभु को सदैव अपनी पूजा से अतिही प्रसन्न रखने लगे।

स्वामी अनन्तश्री रामानुज जी का समय—

	कलि	विक्रमी	ईस्वी	शाक	गत वर्ष
जन्म	४११८	१०७४	१०१७	९३९	७६७
परधाम	४२३८	११९४	११३७ *	१०५९	८८७ ‡
वर्त्तमान	५००५	१९६१	१९०४	१८२६	वय १२० वर्ष

"कल्यऽब्देषु प्रयाते ष्वहह व[1]सुनिशा[1]नाथ च[1]न्द्राब्धि[4]-सङ्ख्येष्वायाते पिंगलाब्दे सवितरिच गते मेषराशिं मृगांके ॥ आर्द्रास्थे कान्तिमत्यां हरितकुलमणेः केशवाख्य द्विजा ग्याच्छ्रीमत्यां भूतपुर्यामथ, धरणितले ऽभूत्स रामानुजार्य्यः ॥ १ ॥" ("विष्णुचिन्ह" ग्रन्थे)

‡ आपके जन्म को "आठसौ वर्ष से अधिक (८८७)" हुए।

* ऐतिहासिकतत्त्ववेत्ता "हरप्रसाद शास्त्री एम० ए०" ने भी ११३७ ही (ईस्वी) आपके परधाम का समय लिखा है; Dr. W.W. Hunter M. A. तथा "A.C. Mukerji, M. A.; मुन्शी श्री तपस्वी राम जी, और R. C. Datta; इन सब ही ने "12th. century (ईस्वी बारहवीं शताब्दी)" लिखी है ॥ Dr. W. W. Hunter ने ११३७ की जगह सीधे सीधे ११५० लिख दिया है; केवल १३ वर्ष मात्र का भेद (इतने में), भेद ही क्या ? अपने ग्रन्थों से ११३७ ही ठीक है ॥

श्रीयतीन्द्र जी के यश श्री"प्रपन्नामृत" में देखिये ॥

भाष्यकार सम्प्रदाय शिरोमणि (श्री लक्ष्मीपद्धति) के प्रसिद्धकर्त्ता, संसारसागर के लिये दीर्घनाव, भक्त जनों के कल्पतरु, श्रीभक्ति रूपी भूमिको स्थिर रखने के लिये दिग्गज, भागवतधर्म के प्रचार तथा प्रकाश के हेतु सूर्य्य के समान, स्वामी अनंतश्री यतीन्द्र रामानुज महाराज जी के रूप से श्रीशेष जी, भगवान् की आज्ञा से, पृथ्वी पर द्राविड़ देश में कांचीपुरी के पास श्रीकावेरी गंगा के तट "भूतनगरी" ग्राम में, श्रीहारीत ऋषीश्वर के वंश (गोत्र) में, "श्रीकेशवजज्वा" नामक याज्ञिक ब्राह्मण की धर्म पत्नी "श्रीकांतिमती" जी के गर्भ से, पिंगल नाम संवतसर में मेष शंक्रान्ति के पीछे आर्द्रा नक्षत्र में चैत शुक्ल पंचमी गुरुवार को, अवतीर्ण हुए। श्रीकेशवजज्वाजी के गुरु श्री "शैलपूरण" जी ने आपके संस्कार किये। कांचीपुरी में पंडित यादवगिरि से १६ सोलह वर्ष की अवस्था में वेदांत पढ़ते थे। उसी अवस्था में उनके पिता का बैकुण्ठ बास हुआ।

वहां के राजा की सुता एक ब्रह्मराक्षस से पीड़ित थी; राजा के बुलाने से यादव पंडित, अपने शिष्य श्री १०८ रामानुज जी समेत, वहां गया। ब्रह्मराक्षस ने कहा "तुझसे मैं नहीं जानेका, पर यदि तेरे यह शिष्य श्रीरामानुज जी अपना चरणामृत मुझे दें तो

मैं अभी इसको छोड़दूं"। राजा के विनय से श्री स्वामी जी ने अपना चरणतीर्थ ब्रह्मराक्षस को दिया वह कृतकृत्य हो गया। लड़की सुखी होगई।

इस बात में, और "कप्यास" शब्द के अर्थ निरूपण, में तथा अद्वैतमत के खंडन में आपका महा प्रभाव देख, मत्सर से भर, उक्त पण्डित यादव आपका शत्रु बरन आपके प्राण का गाहक हो गया। वह अपने एक निज शिष्य से सम्मति करके, चुपचाप त्रिवेणी में डुबा देने के निमित्त, आपको तीर्थ यात्रामिसु श्रीप्रयाग जी ले चला।

आपके मौसेरे भाई "गोविन्दजी" भी उसी पण्डित से पढ़ते थे; श्री रामकृपा से इनको उस दुष्ट पण्डित की गुप्त इच्छा जान्ने में आगई; इनने आपको सावधान कर दिया। आप मार्गके एक बन में छुप रहे और श्री "असहायों-के-परम-रक्षक" जी का स्मरण करने लगे॥

करुणासिन्धु भक्तवत्सल श्रीलक्ष्मीनारायण जी ने, व्याधा भिल्ल और भिल्लिनी के वेष से आपके पास उस बन में रातभर रहके आपकी रक्षा की और प्रातःकाल आपके हाथों से एक कूप का जल पीके वे दोनों अन्तर्धान होगए; और आपने अपने को कान्चीपुरी में पाया; श्रीजनरक्षक भगवान् का धन्यबाद कर घर जा, माता के चरणों के दर्शन कर इनसे सारा वृतान्त सुनाया।

श्रीमातु कान्तिमती जी ने उपदेश दिया कि "वत्स! कान्चीपुरी सत्यव्रत क्षेत्र" में श्री "कान्ची पूरण"

नाम वैष्णव महात्मा (श्रीयामुनाचार्य्य जी के शिष्य) श्रीलक्ष्मीनारायण जी के अनन्योपासक हैं। बेटा! तू जाके उनसे मिल सब प्रसंग सुना और महात्माजी जो आज्ञा दें सो करना ॥"

आपने वैसाही किया। श्रीकान्चीपूर्ण जी ने बताया कि "वत्स! वे भिल्लिनी तथा व्याध के वेष में स्वयं श्रीलक्ष्मीनारायणजी थे, जिनने कृपा करके तुझे उस कूपके जलका माहात्म्य लखाया है। इस्का आशय यह है कि उस कूप के जल से तू प्रभु की (श्री वरदराजभगवान् की) सेवा कर, तेरे सकल मनोरथ पूरे होंगे, प्रभु तुझपर विशेष कृपा करेंगे"। यह सुन, आनन्दमग्नहो, धन्यबाद दे, आपने ऐसाही किया।

श्रीआलवन्दारस्तोत्र के कर्त्ता श्रीयामुनाचार्य्य महाराज जी जो श्रीरङ्ग भगवान की सेवा में उस समय थे, आपको (श्रीरामानुज स्वामी को) बड़े योग्य बालक समझकर अपने एक शिष्य को आपके लाने के लिये भेजा। आज्ञानुसार आप श्रीरङ्ग नगर को चले।

परन्तु आठ दिनके भीतर ही श्रीरंग भगवान् की आज्ञा पा श्री ६ यामुनाचार्य्य स्वामी शरीरत्याग कर परमधामको चले गए। इसकारण यहां आनेपर आपने श्रीस्वामी जी महाराज का दर्शन न पाया; केवल शरीर मात्र को श्रीकावेरी तट पर बड़ी भीड़भाड़ के मध्य देखकर प्रणाम किया। बड़े शोक मग्न हुए।

श्रीस्वामीजी की तीन उङ्गलियां मुड़ी देखकर आपने कहा कि "इस्का तात्पर्य्य यदि अमुक तीन बातें हैं, तो अङ्गुलियां खुल जावें"। इस वचन के उच्चारण के साथही तीनों अँगुलियां एक एक करके खुलही तो गईं; और इसी आश्चर्य्य संघट के समय से सब लोग आपका अधिकतर आदर करने लगे॥ वे तीनों बातें ये थीं–

(१) श्रीसंप्रदाय प्रचार।

(२) ब्रह्मसूत्र पर भाष्य करना।

(३) ईश्वर जीव माया की व्याख्या करनी।

आपने श्री१यामुनाचार्य्य जी के पांच शिष्यों से उपदेश लिये, अर्थात्—

(१) श्रीमहापूर्णजी से, पंच संस्कारयुत श्रीनारायणमन्त्र;

(२) श्रीकाञ्चीपूर्ण जीसे, श्रीवरदराज की सेवा विधि;

(३) श्रीगोष्ठीपूर्णजी से, श्रीराम षड़क्षर मन्त्रराज;

(४) श्रीशैलपूर्णजी से, श्रीरामायण जी के अर्थ;

(५) श्रीमालाधर जी से, सहस्रगीति के अर्थ।

इसके पश्चात विरक्त हो आपने त्रिदंड धारण किया।

(चौ०) "धरे त्रिदण्ड उदण्ड पानि में।
रति अच्छिन्नजानकी जानि में"॥

आप श्रीरंगनगर में पहुँच, श्रीरंगभगवान् की सेवा में रहने लगे।

यह वार्त्ता तो पूर्व ही लिखी जा चुकी है कि रात

को गोपुर पर चढ़के मन्त्र उच्चस्वर से उच्चारण करके आपने जीवों को कृतार्थ कर दिया॥ (पृष्ठ ३८२ पंक्ति २१)
श्रीजगन्नाथपुरी का चरित भी ऊपर ही कहा गया है (क०१०८।१०९ पृष्ठ ३८५।३८६)
ऊपर के लिखे तीनों कार्य्यों में लगे और पूरा किया।

दिग्विजय में अनेक प्रदेशों को कृतार्थ और लाखों मनुष्यों को श्रीभगवान् के शरणागत कर दिया। आपके अति प्रिय शिष्य "श्री कूरेश जी" ने तथा "पण्डित यादव की माताजी ने भी अपने पुत्र को (उक्त पण्डित को) बहुत कुछ उपदेश किया कि "यतीन्द्र महाराज का शिष्य होजा, नहीं तो तेरा कल्याण नहीं।" तब वह आप का शरणागत हुआ, आपने उसके पंचसंस्कार कर गोविन्द प्रपन्न उनका नाम रक्खा।

बारहसहस्र सेवक साथ रहा करते थे; चौहत्तर वा पचहत्तर तो मुख्य शिष्य थे, जिनसे जगत में शरणागति उपदेश का प्रचार हुआ।

दिल्लीपति यवन के यहां से एक भगवन्मूर्त्ति लाकर आपने विराजमान किया। उस बादशाह की लड़की भी भगवत प्रेमिन होकर परम पद को गई।

एक स्त्रीभक्त विषयी को जिस प्रकार से आपने हरि सम्मुख करके "धनुर्दास" नाम रक्खा, वह चरित्र; तथा, विषयी बनिये को सुमति प्राप्त होने के वृत्तान्त भी, सुने ही योग्य हैं।

आपके सुयश अपार हैं। "प्रपन्नामृत" नामक ग्रंथ में, आपके जन्म से भगवद्धाम यात्रा पर्य्यंत के मुख्य मुख्य चरित्र सब, संक्षेप से, वर्णित हैं। अपने सम्प्रदाय के प्रत्येक मूर्त्ति को अवश्य देखना सुना चाहिये। आप १२० (एकसौ वीस) वर्ष पृथ्वी पर विराजते रहे।

☞ आप कलि सम्वतसर ४२३८, विक्रमी सम्बत ११९४ (कलियुग की पांचवी सहस्राब्दी में,) अर्थात् विक्रमी ११९४ तक इस भूमि पर वर्त्तमान थे॥ ऐसा महानुभावों ने तथा ऐतिहासिक विज्ञों ने लिखा है॥

श्रीविष्णुस्वामीजी।

श्रीशिव जी ने यह सम्प्रदाय पहिले श्रीप्रेमानन्द (परमानन्द) मुनि जी को उपदेश किया; इसी से यह "शिव (रुद्र) सम्प्रदाय" कहाजाता है। श्री- "परमानन्द मुनि" जी श्री "विष्णुकांची" पुरी में हुए। आप श्रीवरदराज महाराज के मन्दिर में पूजासेवा किया करतेथे। भगवान् श्रीवरदराज प्रसन्न होके श्रीशिव जी को आज्ञा दी, जिनने मन्त्र उपदेश करके (सातवर्ष के) बालक रूप का ध्यान बताया। इस सम्प्रदाय का श्रीविष्णु स्वामी जी ने प्रचार किया, कि जो दक्षिण देश में ब्राह्मणवंश में हुए। इसलिये "विष्णुस्वामी सम्प्रदाय" प्रसिद्ध हुवा॥

परम्परा में आप श्रीवरदराजभगवान् से पचासवें, श्रीशिव जी से ४९ वें, श्रीप्रेमानन्द मुनि से ४८ वें हैं॥

आप के परहित तथा उदार चित्त को समझ श्री जगन्नाथ जी ने अपने मन्दिर में चारद्वार कर दिये॥

श्रीमध्वाचार्य्यजी।

पहिले, भगवत ने यह (माध्व) सम्प्रदाय श्री-ब्रह्मा जी को उपदेश किया।

फिर इस्का प्रचार श्रीमध्वाचार्य्य स्वामीजी से हुआ। श्री मध्वाचार्य्य जी द्राविड़ देश में कांचीपुरी से पश्चिमदक्षिण (नैऋत्य) कोने पर "उरपी कृष्णा" ग्राम में ब्राह्मण हुए। आपने पंजाब देश में राजा को परिचय दे, उस्का अभिमान नष्ट कर, उस्को उस्के दल समेत हरिसम्मुख कर दिया।

श्रीमध्वाचार्य्य
|
श्रीनरहर्य्याचार्य्य
|
सुबुद्धाचार्य्य
|
श्रीवेदव्यास
|
श्रीनारदजी
|
श्रीब्रह्माजी
|
श्रीहंसभगवान्

(१/८ ४/४ १/२) छप्पै।

चतुर महन्त

चतुर महंत दिग्गज चतुर, भक्तिभूमिदा-बेरहैं॥ "श्रुति प्रज्ञा" "श्रुति देव" "ऋ-

षभ" "पुहकर" इभ ऐसे। "श्रुतिधामा[३]" "श्रुति उदधि[४]" "पराजित" "वामन" जैसे॥ श्रीरामानुज गुरुबंधु विदित जगमङ्गलकारी। "शिव संहिता"-प्रणीत ज्ञान सनकादिक सारी॥ इन्दिरा पद्धति उदार धी सभा साखि सारँग कहैं। चतुर महंत दिग्गज चतुर, भक्तिभूमि दावे रहैं॥२७॥($\frac{३२}{२१३}$)

"सारी" = इव, सरिस, नाईं, सरीखा, समान। "इभ" = वारण, करि, सिन्धुर, गयन्द, गज, हस्ती, हाथी। "सारङ्ग" = मत्त गजेन्द्र। पपीहा। भ्रमर। रामगुणगायक। भक्त॥ "इन्दिरा पद्धति" - श्री श्री सम्प्रदाय, श्रीलक्ष्मी जी का मार्ग। "दिग्गज चतुर" = चारो दिशाओं के हाथी, नाम (१) ऋषभ (२) पुहकर (३) पराजित (४) वामन।

१.	श्रुतिप्रज्ञा	ऋषभ
२.	श्रुतिदेव	पुष्कर
३.	श्रुतिधामा	पराजित
४.	श्रुतिउदधि	वामन

वार्त्तिक तिलक।

चारो महान्त, चारो दिग्गजों की भांति, भक्तिरूपी धरती को दबाए रहते हैं। श्रीश्रुतिप्रज्ञाजी तथा श्री श्रुतिदेव जी, "ऋषभ" और "पुष्कर" नाम के दिशागजों के सरिस हैं; एवं श्रीश्रुतिधामाजी तथा श्रीश्रुतिउदधि जी, "पराजित" और "वामन" सरीखा हैं।

ये चारो महानुभाव, स्वामी अनन्तश्री रामानुज महाराज जी के गुरु भाई जगत के बड़े मंगलकारी और जगत में प्रसिद्ध हैं । शिवसंहिता में जैसा वर्णन है, उसी रीति से सनकादिक चारो भाइयों के समान एकतुल्य ज्ञानी हैं । श्रीलक्ष्मी जी के सम्प्रदाय में अति उदार बुद्धिवाले हैं । सन्त सभा के (पक्षपातरहित) साक्षी सज्जन, इन चारो भक्तिरक्षकों को श्रीरामानुरागमें मत्त गजराज ही कहा करते थे; अतएव अपने भजन सदाचारों से भक्ति रूपी भूमि को ऐसा दबाए रखते हैं कि किंचित् डगने डोलने नहीं पाती ॥

(१४२/८४२) छप्पै ।

(श्री) आचारजजामात की कथा सुनत हरि होइ रति॥ कोउ मालाधारी मृतक बह्यो सरिता में आयो । दाह कृत्य ज्यों बन्धु न्योति सब कुटुँब बुलायो ॥ नाक सकोचहिँ विप्र तबहिँ हरिपुर जन आए। जेंवत देखे सबनि, जात काहू नहिँ पाए ॥ "लालाचारज" लक्षधा प्रचुर भई महिमा जगति । (श्री) आचारजजामात की कथा सुनत हरि होइ रति ॥ २८ ॥(१३/२१३)

"लक्षधा"=लक्षगुण, लाख गुना । "जामात"=सुता का पति, दामाद, जमाई । "हरिपुर"=बैकुण्ठ । "जगति" लोक में ।

श्रीलालाचार्य्यजी ।

वार्त्तिक तिलक ।

कोई मालाधारी मृतकशरीर नदी में बहता हुआ जा रहा था; श्रीलालाचार्य्य जी ने गुरभाई सरीखा उसकी दाहक्रिया इत्यादि करके, ब्राह्मणों तथा सब कुटुम्बों को न्योता देके बुलाया। भूसुर लोगों ने अनजाने मृतक के भण्डारे को जानकर नाकसिकोड़ भोजन नहीं स्वीकार किया; तब बैकुण्ठ से हरिजन लोग हरिकृपा से आके प्रसाद पाने लगे। उनको जेंवते तो सबों ने देखा परन्तु जाते हुए उनको किसी ने नहीं देखा। इससे श्रीलालाचार्य्यजी का माहात्म्य जगत में लाखों गुना अधिक प्रसिद्ध हो गया। आचार्य्य स्वामी श्रीरामानुज जी महाराज के जामात की यह कथा जो सुनेगा तिसकी श्री भगवत तथा वेषधारी भागवतों में अवश्य प्रीति होगी॥

(१४३/८४२) टीका। कवित्त।

आचारज को जामात, बात ताकी सुनो नीके, पायो उपदेश "सन्त बन्धु करि मानिये। कीजै कोटि गुनी प्रीति," ऐपै न बनति रीति तातें इति करी याते घटती न आनिये॥ मालाधारी साधु तनु सरिता में बह्यो आयो, ल्यायो घर फेरिकै विमान सब जानिये। गावत बजावत लै नीर तीर दाह कियो, हियो दुख पायो सुख पायो समाधानिये॥ ११० ॥ (६२९—५१९)

"इति"=मर्यादा, सीमा।

वार्त्तिक तिलक।

स्वामी श्री१०८ रामानुज जी के जामात श्रीलालाचार्य्य की कथा भली भांति सुनिये। श्रीगुरुमहाराज ने उपदेश किया कि "सन्तों को अपने भाई मानना और भाई से कोटि गुनी प्रीति उनसे करनी" तब श्रीलालाचार्य्य जी ने कहा कि "स्वामिन् आज्ञा तो हुई परन्तु कोटि गुनी प्रीति रीति बनती तो नहीं" तब श्री गुरुस्वामी ने कहा कि, "(ताते) भाई की प्रीति से, सन्तों में न्यून न होने पावै इति।

एक बेर आपने एक मालाधारी मृतक शरीर नदी में बहते हुए पाया। वेष से सन्त जानके उसमें भ्राता तनु का भाव मानके उसे घर ला, विमान पर विठा गाते बजाते फिर उस नदी के तीर ले जाके उसकी दाह क्रिया की।

(१४४/८४२) टीका। कवित्त।

कियो सो महोच्छो, ज्ञाति विप्रन को न्योतो दियो, लियो आए नाहिँ कियो शंका दुःखदाइयें। भए एक ठौरे, माया कीनी सब बौरे कछु कहैं बात औरे मरी देह बही आइयें॥ याते नहीं खात, वाकी जानत न जाति, पांति बड़ी उतपात घर ल्याइ जाइ दाहियें। मग अवलोकि उत पस्यो सुनि शोक हिये जिये आइ पूछैं गुरु कैसेके निबाहियें॥ १११॥ (६२९-५१८)

"मायाकीनी"=बखेड़ा गठा, झंझट खड़ा किया, जाल फैलाया। "मग अवलोकि" = बाट हेरके, मार्ग देखके, प्रतीक्षा करके। "लियो"= न्योतो लियो। "कहैं बात और"=दूसरी ही वार्त्ता कहने लगे। "पूछौं गुरु"=श्री गुरु जी से पूछूं। "कैसेकैं" = किस प्रकार से ?

वार्त्तिक तिलक।

इनने अपने भाई सरीखा उसकी तेरहीं का महोत्सव किया; ब्राह्मणों और अपने जातिवर्ग को नेवता दिया; उनने नेवता तो लेलिया, परन्तु आए नहीं; क्योंकि इन महात्मा जी की दुखदेनेवाली शंका उन्हों ने की; और जात्याभिमान रूपी मद से बावरे वे सब इकट्ठे होके और की और ही कहने लगे कि "देखो उसमृतकका शरीर नदी में बहके आया था, उसको घर लाके, घाट पर लेजाके, उसको जलाया, कर्म किया; उसकी जाति पांति कुछ भी जानते नहीं, सो यह बात तो बड़ेही उत्पात की है"। ऐसा गठ के कहा कि "हम सब भोजन नहीं करेंगे"।

श्रीलालाचार्य्य जी ने उनकी प्रतीक्षा की; पर जब वे न आए और उनकी दुष्ट सम्मति सुन्ने में आई, तब आपका हृदय शोकाकुल हुवा। जी में यह बात आई कि चलूं, श्री१०८ गुरुदेव स्वामीसे पूछूं कि अब किस भांति मेरा निर्वाह होवे ?

(१४५/८४२] टीका। कवित्त।

चले श्रीआचारज पै वारिज बदन देखि, करि साष्टाङ्ग, बात कहि सो जनाइये। "जाओ निहशंक, वै प्रसाद

को न जानैं रंक; जानैं जे प्रभाव, आवैं बेगि सुखदाइये॥"
देखे नभ भूमि द्वार ऐहैं निरधार जन बैकुंठनिवासी
पांति ढिग ह्वैके आइये। इन्हैं अब जान देवो जानि कछू
कहो अहो गहो करो हांसी जब घर जाँइ खाइये॥११२॥
(६२९—५१७)

"रङ्क"=श्रीभगवद्भक्तिसंपत्ति से हीन, दरिद्री। "अहो"=हे भाइयो!

वार्त्तिक तिलक।

ये श्रीआचार्य्यजीमहाराज (भाष्यकारस्वामी) से प्रार्थना करने को चले; जाके मुखकमल का दर्शन कर सप्रेम सादर साष्टाङ्ग दण्डवत किये; और वे सब बातें निवेदन कीं। आपने आज्ञा की कि "उन अभागे कँगलों को श्री-भगवत-प्रसाद का माहात्म्य विदित नहीं; (श्लो०) "प्रतिमामन्त्रतीर्थेषु भेषजे वैष्णवे गुरौ। यादृशी भावना यस्य, सिद्धि र्भवति तादृशी॥" तुम निःशंक जाओ निश्चिन्त रहो; क्योंकि जो दिव्य महानुभाव श्रीप्रसाद का अनुपम प्रभाव जानते हैं, वेही सुखदाई शीघ्र कृपा करके आवेंगे"। श्री आचार्य्य स्वामी ने इतना कहके आकाश की ओर देख के फिर भूमि को देखा। तात्पर्य्य यह कि वैकुण्ठवासी पार्षदों का ध्यान स्मरण करके आकाश के ओर देख के मही में आवाहन किया। फिर कहा कि "जावो श्रीवैकुण्ठनिवासी भगवतजन नभमार्ग से निराधार उतरके तुम्हारे द्वार होके गृह में आवेंगे।"

ऐसी आज्ञा सुन शिरपर धारण कर साष्टाङ्ग करके अपने गृह में आए। उसी समय श्रीबैकुण्ठनिवासी जनों की पंक्ति उन विमुखों के निकट होके श्रीलालाचार्य्य जी के गृह में आई। वे अभक्त लोग देखके परस्पर कहनेलगे कि "हे भाइयो! अभी इन सबों को जाने दो, कुछ कहो मत, फिर जब भोजन करके अपने घर जाने लगैं तब पकड़ के अपने समीप बिठा के अच्छे प्रकार हांसी निन्दा करो"॥

(१४६) टीका। कवित्त।

आए देखि पारषद, गयो गिरि भूमि सद, हद करी कृपा यह, जानि निज जन को। पायो लै प्रसाद स्वाद कहि अहलाद भयो, नयो लयो मोद जान्यो सांचो सन्तपन को॥ विदा ह्वै पधारे नभ, मग में सिधारे; विप्र देखत विचारे द्वार, व्यथा भई मन को। गयो अभिमान आनि मन्दिर मगन भए नए दृग लाज; बीनि बीनि लेत कनको॥ ११३॥ (६२९—५१६)

"सद"=सज्जन, (श्रीलालाचार्य्य जी) "हद"= इति।

वार्त्तिक तिलक।

श्रीलालाचार्य्य जी ने अपने गृह में श्रीभगवतपार्षदों को आए देख भूमि में गिर के, साष्टाङ्ग दण्डवत किये, और हाथ जोड़ आप कहने लगे कि "आप सबौं ने इस दीन को अपना जन जान के इसके ऊपर निःसीम कृपा की"।

पार्षदों ने प्रसाद लेके पाया (भोजन किया), और उसके स्वाद का बखान कर कर श्रीलालाचार्य्य जी को बड़ाही आनन्द दिया; इनने ऐसा यह मोद प्रमोद पाया कि जो अपूर्व था और पहिले कभी भी प्राप्त न हुआ था। तब भली भांति जाना कि सन्तों का प्रण कैसा सच्चा होता है।

सर्वज्ञ श्रीपार्षदवृन्द विदा होके आकाशमार्गसे चले ब्राह्मण लोग मग में द्वार पर खड़े खड़े देखतेही रहे। जब जाना कि वे तो आकाश मार्ग से लौटे चले जा रहे हैं, वैकुण्ठसे आए थे, तब उन सबों के मन में बड़ाही पश्चात्ताप हुआ; अब उनका जात्यभिमान गया। और आखें नीची हुईं, नम्र तथा लज्जित हुए, और श्रीलालाचार्य्यजी के गृह में आके प्रेमानन्द में मग्न भी हुए।

अवशिष्ट प्रसाद के कण, जो भूमि में गिरे पड़े थे, उनको चुनचुन के पाने लगे॥

[१४५४] टीका। कवित्त।

पाइ लपटाइ अंग धूरि में लुटाए कहैं "करी मन भायो," और दीन बहु भाष्यो है। कही भक्तराज "तुम कृपा मैं समाज पायो, गायो जो पुराणन में रूप नैन चाख्यो है"॥ छाड़ो उपहास अब करो निज दास हमैं, पूजै हिए आस मन अति अभिलाष्यो है। किये पर-शंस मानो हंस ये परम कोऊ ऐसे जस लाख भांति घर घर राख्यो है॥ ११४॥ (६२९—५१५)

वार्त्तिक तिलक ।

वे ब्राह्मण श्रीलालाचार्य जी के चरण कमलों में लपट गए, वहां की धूरि में लोटने लगे, और यों बोले कि "आप महात्मा हैं जिस प्रकार से हम आपको प्रिय लगें सो वैसा कीजिये, अर्थात् शिष्य करके भगवद्भक्त कीजिये"। इसी प्रकार से बहुत सी दीनता पूर्वक बातें कहीं। श्रीभक्तराज (लालाचार्य्य) जी ने कहा कि "आपही के न आने से तो इस दिव्य समाज की सेवा का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ; अतः आपकी कृपा का मैं धन्यबाद करताहूं कि जिस्से मैंने उन भगवतपार्षदों के रूप के दर्शन पाए कि जिनका पुराणों में बखान सुना था।"

तब उन विप्रों ने पुनः प्रार्थना की कि "अब आप हमारी हँसी तो कीजिये नहीं; बरन दया करके हम को अपना दास बना लीजिये। हम सबों के मन की यह अति अभिलाषा पूर्ण कीजिये"। तब श्री लालाचार्य्य जी ने सबों को श्रीमंत्र तिलक आदिक पंचसंस्कार करके लोक बेद में परमप्रशंसनीय हंसों के समान बेष तथा बिबेक युक्त कर दिया। इत्यादि। इसी प्रकार श्रीलालाचार्य्य जी के यश, लक्ष बिधि के, देश में घर घर सब कोई मन में तथा मुख में भी, रक्खे अर्थात् गान किए॥

श्रीश्रुतिप्रज्ञजी।

आप ब्राह्मण थे; लड़कपन सेही बड़े वैरागी तथा नामानुरागी रहे, और अपने मन में वैष्णवों में जाति भेद नहीं रखते थे। आप देशों में विचरके भगवन्नाम का उपदेश किया करते तथा भक्ति ही को भारी आधार समझते थे। नीलाचल के मार्ग में एक अति प्रेमी श्वपच को साष्टाङ्ग करते पाके उठाकर उसको अपने हृदय में लगा लिया और अपने पट से उसके अंग की धूरी झाड़ डाली। उसके हाथों में महाप्रसाद था सो लेके सादर पागए। रात भर उस प्रेमी श्वपच को अपने साथ रखके सवेरे अतिशयआदर-पूर्वक विदा किया। श्रीजगदीश दर्शन कर, सुयशभाजन रहे, और परधाम को गए॥

श्रीश्रुतिदेव जी।

आप बहुतसे सन्तों का समाज साथ में लिये, श्री रामनाम कीर्त्तनपूर्वक विचरते, और सब लोगों को कृतार्थ किया करते थे। एक समय एक अभक्त राजा के नगर में पहुँचे जहां कोई नदी तालाब नहीं, केवल वापी तथा कूएं ही राजबाटिकाओं में थे।

जब साधु लोग उपवन के कूपों में स्नान करने गए, मालियों ने उनको रोक दिया। सन्त दुखी हो स्वामी जी से कष्ट निवेदन करने लगे। आपने कहा कि विना

स्नानही नामकीर्त्तन कर लो और तब इस नगर को छोड़ चलो। यह आज्ञा सुन इधर सन्त हरिभजन में लगे, उधर कूपों तथा वापियों में जल ही नहीं। मालियों ने जाके राजा से सब वार्त्ता सुनाई; नरेश ने मन्त्रियों से पूछा; सचिव लोगों ने पूछपाछ बूझ-विचार कर निवेदन किया कि "महाराज! यहां साधु-समाज आया है, सन्तों की ही कृपासे यह जलाभाव-का-कष्ट जा सकेगा, इस समाज के मुखिया श्रीश्रुति-देव नाम महात्मा हैं, उन्हीं से प्रार्थना करनी चाहिये"। ऐसाही किया गया।

सब प्रजाओं सहित राजा श्रीस्वामी जी के शरणागत हो कृतार्थ हुए। स्वामीजी महाराज उस देश को हरिभक्त बनाकर दूसरी ओर चले। ऐसे ऐसे चरित्र आपके अनेक हैं॥

श्रीश्रुतिधामजी।

आप परमोदार थे और भगवत तथा भगवद्भक्तों में अभेद बुद्धि रखतेथे; भेष (ऊर्द्ध पुण्ड्र, कंठी, माला, छाप) की महिमा भली भांति जानते मानते थे। आपके गुणों की गिन्ती कौन कर सके? एक समय साधुसमाज सहित श्रीप्रयागजी जा स्नान कर त्रिवेणी पर हरि कथा कहरहे थे; एक सन्त ने पूछा कि "महाराज इस संगम पर श्रीसरस्वति जी का नामही मात्र तो सुना जाता है देखने में तो आतीं ही नहीं" आप यह

सुन ध्यान में मग्न हो गए; शीघ्रही सबों ने देखा कि श्रीस्वेत गंगाधार, श्रीश्यामयमुनाधार के बीच तेज मय अरुणधार श्रीसरस्वती जी का भी वहीं दर्शनीय है। मकर के वासी दौड़के स्नान करने लगे। सन्तों ने स्वामी जी से निवेदन किया; आप भी उठ प्रणाम कर साधुओं सहित स्नान करने लगे। ऐसे अनेक सुयशों के साथ आप जगत में प्रसिद्ध रहे।

श्रीअतिउदधिजी।

सब सद्गुणों के समुद्र एक दिन श्रीगंगा जी की ओर जाते थे मार्ग में एक राजा की बाटिका में रात्रि-निवास किया। उस रात को राजा के भवन में चोरी हुई; चोरोंने भागके उसी उपवन में आपको ध्यान में पा, एक माला पहिरादी। कोतवाल के भटों ने उन्हें देखा; वे आपको पकड़ ले गए; राजाने बन्दीघर में भेजदिया, तब शीघ्र ही नरेश सीसकीपीड़ा से व्याकुलहुआ, किसीप्रकार न छूटी, तब सचिव के कहने से राजा त्राहि त्राहि कर आपके चरणोंपर गिरा। आप ने तब आखें खोलीं और सारा समाचार सुना। राजा की पीड़ा-रहित कर, श्री राममन्त्र दे, कृतार्थ किया।

कहां तक आपके यश गाए जासकें॥

ये चारो महात्मा गुरुभाई हैं। पृष्ट ३९५ देखिये॥

[१४८/८४२] छप्पै।

श्रीमारग उपदेश कृति श्रवण सुनौ आख्यान शुचि॥ गुरु गमन कियो परदेश, शिष्य सुरधुनि दृढ़ाई। इक मंजन इक पान एक हृदय बन्दना कराई॥ गुरु गंगा में प्रविशि शिष्य को बेगि बुलायो। बिष्णुपदी भय जान, कमल पत्रन पर धायो॥ "पादपद्म" ता दिन प्रगट, सब प्रसन्न मन परम रुचि। श्रीमारग उपदेश कृति श्रवण सुनौ आख्यान शुचि॥ २९॥ (३४/२१३)

वार्त्तिक तिलक।

गुरु, और शिष्य (पादपद्म जी)।

एक और श्रीसम्प्रदायवाले भागवत का पवित्र वृत्तान्त सुनिये। इनके गुरु परदेश चले; इनको श्रीगंगा जी में गुरु का भाव दृढ़ रखनेकेलिये उपदेश दिया; इनने श्रीगुरु आज्ञा को हृदय में दृढ़ धारण कर लिया। तब कोई शिष्य स्नान किया करें, कोई पान किया करें; परन्तु ये गुरुभक्त जी तो केवल हृदय से ही बन्दन प्रणाम मात्र करते थे। जब श्रीगुरु जी आए, शिष्यों से सब बातें सुनीं, तब इनकी भक्तिमहिमा प्रगट करने के हेतु श्रीगंगाजीमें जलके भीतर जाके वहीं शिष्य

वार्त्तिक तिलक।

श्रीगुरुजी इनको साथ लेके, (इनकीभक्तिमहिमा को प्रगट करने के निमित्त,) श्रीगंगा स्नान को चले; श्रीगंगाजल के भीतर गए और अत्यन्त प्रेम में पगके शिष्य को (इनको) आज्ञा की कि "मेरी अँगोछा शीघ्र लाकेदो"। ये बड़ेही अपार शोच विचार में पड़े कि इत तो श्रीगंगा जी उत श्रीगुरुजी और दोनों ही में इनकी भावभक्ति अपूर्व ठहरी; अपार असमंजस में पड़े। इतने में तुरन्त ही श्रीगंगाजी इनको प्रगट देखपड़ीं और कृपा करके बोलीं कि "यह देखो तुम्हारे पाससे गुरु जी के समीप तक कमल के पत्ते प्रगट हो गए, तुम निस्सन्देह इन्ही पत्तों ही पर पांव रखते हुए बे-खटके चले आओ"।

आज्ञानुसार ये अधर पर अर्थात् उन्हींकमलपत्रों पर पांव रखते हुए दौड़े और वहां पहुंचके श्रीगुरुकरकंज में अँगोछा दी, और आपने आनन्द पूर्वक उसको लिया यह परिचय, यह आश्चर्य्य, यह गुरुभक्ति माहात्म्य, यह श्रीगंगाजी की कृपा! देखने के लिये तट पर भारी भीड़ एकट्ठी हो गई। जों ही ये तीर पर लौटे, लोग दौड़दौड़के इनके चरणों में लपटलपट गए; और इस महत प्रताप को उस दिनसे सब लोग दिनरात गान करते रहे॥

[१५१/८७२] छप्पै।

श्रीरामानुज पद्धति प्रताप अवनि अमृत ह्वै अनुसर्‌यो॥ "देवाचारज" द्वितीय महा महिमा "हरियानँद"। तस्य "राघवानन्द" भए भक्तन को मानँद॥ पत्रावलम्ब पृथिवी करी व काशी स्थाई। चारि बरन आश्रम सबही को भक्ति दृढ़ाई। तिनके "रामानँद" प्रगट, विश्व मंगल जिन्ह वपु धर्‌यो। श्रीरामानुज पद्धति प्रताप अवनि अमृत ह्वै अनुसर्‌यो॥ ३०॥ (३५/२१३)

[१५२/८७२] छप्पै।

श्रीरामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो॥ अनन्तानन्द[१], कबीर[२], सुखा[३], सुरसुरा[४], पद्मावति[५] नरहरि[६]। पीपा[७], भावानन्द[८], रैदास[९], धना[१०] सेना[११], सुरसुर की[१२] घरहरि॥ औरौ शिष्य प्रशिष्य एक ते एक उजागर। विश्वमंगल आधार सर्वानँद दशधा के आगर॥ बहुत काल बपुधारिकै, प्रणत

जनन कौं पार दियो। श्रीरामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो ॥ ३१ ॥ (३६/२१३)

"करीव"=करीब, समीप; करके। "करी"=किया। "व"=और। "वपुधर्यो"=देह धरी, अवतीर्ण हुए, प्रगटे, अवतारलिया।

"द्वितीय"=अर्थात्, प्रथम महामहिमायुक्त श्री६ देवाचार्य्य (देवाधिपाचार्य्य), और, द्वितीय महामहिमा-से-युक्त श्री१०८ हरियानन्द स्वामी।

वार्त्तिक तिलक।

अनन्त श्री रामानुज स्वामी के संप्रदाय का अमृत रूपी प्रताप भूमंडल में शिष्य प्रशिष्यादि द्वारा, जीवों के मरणादि दुःखों को नाश करता हुआ अतिशय फैल गया और फैलताही जाता है; तात्पर्य्य यह है कि जो कि श्रीरामानुज स्वामी जी को, प्रथम छप्पै में, "उदारसुधानिधि" कह आए सोई अब दिखाते हैं।

स्वामीअनन्तश्री रामानुजजी की "७४ गादियां" जो विख्यात हैं, उनमें मुख्यगादी श्री ६ देवाचार्य्य (देवाधिपाचार्य्य) जी की है; आपके अनेक शिष्यों प्रशिष्यों के नाम, ग्रन्थ विस्तृत होने के कारण, प्रगट न करके ग्रन्थकार स्वामी ने इस छप्पै में गुरुपरंपरा में से केवल "महामहिमा युक्त" दोनों महानुभावों के ही नाम लिखे; अर्थात् (१) श्री ६ देवाचार्य्य स्वामी जी महाराज, (२) तथा श्री ६ हर्यानन्दाचार्य्य (=प्रबोधानन्द=सद्यानन्द) स्वामी जी।

सो, बीच के भी शिष्यों प्रशिष्यों के नाम लिखे जाते हैं—

श्रीराममंत्र-गुरु-परंपरा में, जो जो बड़े प्रतापी हुए, अब उनके नाम कहते हैं—

(श्लो०) लक्ष्मी नाथ समारम्भां नाथयामुन मध्यमाम्।
अस्मदाचार्य्य पर्य्यन्तां वन्दे गुरु परम्पराम्॥ १॥

श्रीरामानुज स्वामी[१] जी के मुख्य दो शिष्य हुए श्रीकुरेश (कुरुतारक, श्रीकुरुकेश) स्वामी जी तथा श्रीगोविन्दाचार्य्य[२] जी; *

उन के शिष्य श्रीपराशर[३] भट्ट जी, तिनके शिष्य श्रीलोकाचार्य्य[४] जी: उनके शिष्य महा महिमा से युक्त श्रीदेवाचार्य्य[५] (देवाधिपा चार्य्य) जी; उनके श्रीशैलेशाचार्य्य[६] जी; उनके श्रीवरवर मुनि[७] जी; उनके श्रीपुरुषोत्तमाचार्य्य[८] जी; उनके श्री गङ्गाधर[९] जी; उनके श्रीसदाचार्य्य[१०] जी; उनके श्रीरामेश्वराचार्य्य[११] जी; उनके श्रीद्वारानन्द[१२] जी; उनके श्रीदेवानन्द[१३] जी; उनके श्रीश्यामानन्द[१४] जी; उनके श्री श्रुतानन्द[१५] जी; उनके श्रीचिदानन्द[१६] जी; उनके श्रीपूर्णानन्द[१७] जी; उनके श्री श्रियानन्द[१८] जी; और, इनके शिष्य महामहिमा से युक्त श्री१०८ हर्य्यानन्द (हर्य्यानन्दा चार्य्य) स्वामी जी।

* श्रीगोविन्दाचार्य्य जी प्रथम गृहस्थाश्रम में श्रीशैलपूर्णस्वामी के शिष्य थे परन्तु श्रीरामानुजस्वामी जी से त्रिदण्ड सन्यास ग्रहण करके विरक्त शिष्य हुए॥ श्री १०८ अग्र स्वामी जी की "रहस्य त्रय" की जो संस्कृत टीका १९३५ में श्रीकाशी जी में छपी है उससे भी यह परम्परा ठीक ठीक मिलती है॥

१. श्री १०८ स्वामी जी
२. {श्रीकुरेशजी / श्रीगोविन्दाचार्य्यजी}
३. श्रीपराशरभट्टजी
४. श्रीलोकाचार्य्य जी
५. श्री देवाधिपाचार्य्य जी
६. श्रीशैलेशाचार्य्यजी
७. श्रीबरबर मुनिजी
८. श्रीपुरुषोत्तमाचार्य्य जी
९. श्रीगङ्गाधर जी
१०. श्रीसदाचार्य्य जी
११. श्रीरामेश्वराचार्य्य जी
१२. श्रीद्वारानन्द जी
१३. श्रीदेवानन्दजी
१४. श्रीश्यामानन्द जी
१५. श्रीश्रुतानन्द जी
१६. श्रीचिदानन्द जी
१७. श्रीपूर्णानन्द जी
१८. श्रीश्रियानन्द जी
१९. श्रीहर्यान्द जी
२०. श्री १०८ राघवानन्दाचार्य्य स्वामी जी
२१. अनन्तश्रीभगवान् रामानन्द जी

स्वामी अनन्तश्री रामानन्द जी।

(श्लोक) नम आचार्य्यवर्य्याय रामानन्दाय धी मते।
मोक्षमार्गप्रकाशाय चतुर्वर्गप्रदाय च ॥१॥

महामहिमा से युक्त श्री हर्यानन्दाचार्य्य [१९] स्वामी, उनके शिष्य समस्त भगवद्भक्तों के मानदेनेवाले श्री १०८ राघवानन्दाचार्य्य [२०] जी; जो, पहिले, बैष्णवों के वृन्द साथ लेके, भरत खण्ड की संपूर्ण पृथ्वी में विचरके, भगवत विमुखों को जीत, अपने विजयपत्र के अवलम्ब में भूमि को करके, काशी जी में स्थिर विराजमान हुए; और चारो बर्ण (ब्राह्मण, क्षत्री, बैश्य, शूद्र,) तथा चारो आश्रमी (ब्रह्मचारी, गृहस्थ,

बानप्रस्थ तपस्वी, संन्यासी) इन सबों को उत्तम उपदेश देकर श्रीराम भक्ति में दृढ़ स्थित कर दिया।

इन्ही श्रीराघवानन्द[20] स्वामी जी के शिष्य, साक्षात् श्रीरामराघव जी आपही, श्रीरामानन्द[21] रूप से प्रगट हुए, कि जो बिश्व (संसार) भर के मङ्गल की मूर्त्ति ही हैं, अर्थात् सब संसार के जीवों का जिनने मङ्गल किया।

इस प्रकार श्री१०८रामानुज की "पद्धति"(शुभमार्ग) का प्रताप, भूमि मण्डल में अमृत रूप हो के फैल रहा और फैलता जाता है।

श्रीरामानन्द स्वामी जी ने श्री रघुनाथ जी की नाईं, संसार रूपी समुद्र में, जगत के जीवों को उतर जाने के हेतु, दूसरा सेतु (पुल) बांध दिया। तात्पर्य यह है कि जैसा अद्भुत जगत्समुद्र था उसी प्रकार का अद्भुत सेतु भी बनाया। आपके मुख्य शिष्य सोई दृढ़ खंभे हुए, और पौत्रशिष्य, ("प्रशिष्य") प्रपौत्रादिशिष्यगण, सोई इस सेतु के सर्बाङ्ग हुए।

"बहुतकाल" पर्य्यन्त शरीर को धारण करके, आप ने "प्रणत" (शरणागत) जन समूहों को श्रीरामतारक रूपी सेतु पर चढ़ा के, संसार सागर के पार उतार, श्रीरामधाम में निवास दिये॥

भवसिन्धुसेतु के खंभे रूपीउन मुख्य शिष्यों के नाम—

(ज्येष्ठ) श्री अनन्तानन्द[1] जी; श्रीकबीर[2] जी, श्रीसु-

खानन्द[3]जी, श्रीसुरसुरानन्द[4]जी, श्रीपद्मावती[5]जी, श्री नरहरियानन्द[6]जी, श्री पीपा[7]जी, श्रीभावानन्द[8]जी, श्रीरमादास (श्रीरैदास[9]जी), श्रीधना[10]जी, श्रीसेना[11]जी, श्रीसुरसुरानन्द-जी-की-स्त्री "सुरसरी"[12]जी।

और भी शिष्य अर्थात् श्रीगालवानन्द[13]जी; और प्रशिष्य श्रीयोगानन्द[14]जी, जिन सबों के नाम भी श्रीनाभास्वामी जी आपही आगे कहेंगे; जो श्रीरामप्रेम प्रकाशयुक्त एक से एक अधिक चढ़ बढ़ के हुए। विश्वके मङ्गल करने-वाले जो श्रीरामानन्द स्वामी तिन की कृपा का आधार पा के सब "आनन्द" युक्त नामवाले श्रीअनन्तानन्दादि शिष्य, परमानन्दरूपा (दशधा) प्रेमा पराभक्ति के स्थान, श्रीरामभक्ताग्रगण्य परमप्रवीण हुए॥

(श्लो०) राघवानन्द एतस्य रामानन्द स्ततोऽभवत्। सा-
र्द्धद्वादशशिष्याः स्युः श्रीरामानन्दसद्गुरोः ॥१५॥
द्वादशादित्यसंकाशास्संसारतिमिरापहाः।
श्रीमदनन्तानन्द[1]स्तु सुरसुरानन्द[2] स्तथा ॥१६॥
नरहरियानन्द[3]स्तु योगानन्द[4]स्तथैवच।
सुखा[5]भावा[6]गालवं[7] च सप्रीते नाम नन्दनाः॥१७॥
कवीर[8]श्च रमादासः[9] सेना[10] पीपा[11]धना[12]स्तथा।
पद्मावती१२½ तदर्द्धं च षड़ेते च जितेन्द्रियाः॥१८॥
येषां शिष्यप्रशिष्यैश्च व्याप्ता भारतभारती॥"

श्री १०८ अग्रस्वामी कृत "रहस्य त्रय" की संस्कृत टीका, (श्री काशी १९३५ की छपी), के ये साढ़े बार श्लोक हैं॥

[१] श्रीअनन्तानन्दजी। ["सिद्ध परमप्रेमी रघुनाथा।
सियजू हाथ धरे जिन्हमाथा॥"]

[२] श्री१०८ सुरसुरानन्दजी। ["सन्तप्रसाद प्रभाव विद, प्रथमहि पाए स्वाद। सोइ याहू तन सत करी, महिमा महाप्रसाद॥"]

[३] श्रीसुखानन्दजी। ["आचारज गुरु भक्ति निधाना।
निरत मन्त्र मन्त्रार्थ बिधाना॥"]

[४] श्रीनरहरियानन्द जी। ["रामभक्त कुल कैरव चन्दा॥"]

[५] श्री६ पीपा जी। ["जगत विदित सियराम पद, पीपा प्रेम प्रताप। लगी भागवतभुजन महँ, जिन्ह की लाई छाप॥"]

[६] श्रीकबीरजी। ["छाके राम नाम रस स्वादा॥"]

[७] श्रीपद्मावति जी।

[८] श्रीभावानन्दजी। ["निरत रामसेवा मतिमाना।
गूढ़ प्रेम विज्ञान निधाना॥"]

[९] श्रीसेनाजी। ["सदा सन्तसेवा मति पागी।
भक्तियोग युत अति बड़ भागी॥"]

[१०] श्रीधना जी। ["सुमति सन्तसेवा लयलीना।
सदाचार गुरु- भक्त प्रवीना॥"]

[११] श्रीरैदास जी। ["रमादास शासन मति दासी। सदा भागवत धर्म प्रकासी॥ निःकिंचन उदार गुरु सेवी। भाविक राम तत्त्व को भेवी॥"]

[१२] देवी श्रीसुरसरी जी श्रीसुरसुरानन्दजी की स्त्री। ["विषयविगत रघुबर रति सानी। गुरपदभक्ता तन मन बानी॥ परम पुरुष गुनि राम बिहारी। और सबै जग जान्यो नारी"]

[१३] श्रीगालवानन्द जी। ["उपदेशक वेदान्त वित,
योगी रतरघुनन्द।"] यह नाम इस छप्पै में नहीं है॥

[१४] श्रीयोगानन्द जी। ["योग निधान निरत रघुराई॥"]

☞ श्रीयोगानन्दजी श्रीअनन्तानन्द जी के शिष्य हैं॥

गिनती	जिस ने अवतार लिया	जिस नाम से मृतलोक में ख्यात हैं	जन्म समय						
			महीना	पक्ष	तिथि	दिन	लग्न	नक्षत्र	योग
१	विधाता	श्रीअनन्तानन्द	कार्त्तिक	शुक्ल	१५	शनि	धन	कृत्तिका	
२	शिवशंभु	सुखानन्द	वैसाख	शुक्ल	९	शुक्र	तुला	सतभिषा	
३	श्री नारद	श्रीसुरसुरानन्द	वैसाख	कृष्ण	९	गुरु	वृष		
४	सनत्कुमार	नरहरियानन्द	वैसाख	कृष्ण	३	शुक्र	मेष	अनुराधा	व्यतीपात
५	मनु	पीपा	चैत्र	शुक्ल	१५	बुध	धन	उत्तरा-फाल्गुणी	
६	प्रह्लाद	कबीर	चैत्र	कृष्ण	८	मंगल	सिंह	मृगसिरा	शोभन

७	श्रीजनक	भावानन्द	बैसाख	कृष्णा	६	चन्द्र	कर्क	मूल
८	भीष्म	सेना	माधव	कृष्णा	१२	रवि	तुला	पूर्वा
९	बलि	धना	माधव	कृष्णा	८	शनि	वृश्चिक	पूर्वाषाढ़
१०	यमराज	रमादास (रैदास)	चैत्र	शुक्ल	२	शुक्र	मेष	चित्रा
११	श्रीपद्मा	पद्मावती	चैत्र	शुक्ल	१३	गुरु	कर्क	उत्तराफा०
१२	...	सुरसरी	...	...	...	...	...	...
(१३)	शुकदेव	गालवानन्द	चैत्र	कृष्णा	११	सोम	धन	धनिष्ठा
(१४)	कपिल	योगानन्द*	बैसाख	कृष्णा	७	बुध	कर्क	मूल

* श्रीयोगानन्द जी श्री पौत्र शिष्य हैं अर्थात् श्री अनन्तानन्द जी के शिष्य हैं॥

(कवित) प्रगट प्रयाग भाग कश्यप ज्यों भूसुर के सातैं माघकृष्णा भारतखण्ड से अरामी हैं। काशी-से-प्रकाश में प्रकाश सुखरास किए, बारहौ सु शिष्य मानों कला[१२] तेजधामी हैं। कलि-की-कुचाल-निशा खण्डे हैं पखंड-तम, दुरिगे अभक्त चोर पंथ-घोर बामी हैं। फैल्यो बेष घाम, धाम धाम सन्त कंज खिले "मणीरसरङ्ग" रवि रामानन्द स्वामी हैं॥ १॥

स्वामी श्री१०८ रामानन्द जी दयालु श्रीप्रयागराज में कश्यप जी के समान भगवद्धर्मयुक्त बड़भागी कान्यकुब्ज ब्राह्मण "पुण्यसदन" के गृह में, विक्रमीय सम्वत् १३५६ के माघ कृष्णा सप्तमी तिथि में, सूर्य्य के समान सबों के सुखदाता, सात दण्ड दिन चढ़े चित्रा नक्षत्र सिद्ध योग कुम्भ लग्न में गुरुबार को, "श्रीसुशीला देवी" जा से प्रगट हुए।

(दो०)चारि सहस शतचारि भी, गत कलिकाल मलीन।
तेहि अवसर नर लोक हरि, निवसनहित चित दीन॥

कलियुग के ४४०० वर्ष गतहो चुकने के अनन्तर—

विक्रमी	शाके	ईस्वी	कलि
†१३५६	१२२२	१३००*	४४००

*Dr. W. W. Hunter, M. A. और A. C. Mukerji M. A. B. L. ने भी यही लिखा है।

† और श्रीतपस्वीराम जी सीतारामीय ने भी सम्बत् १३५६ ही लिखे हैं।

(श्लो०) "रामानन्दमहामुनिस्समभवद्रागेषु रामावनी (१३५६) युक्ते विक्रमवत्सरे घटतनौ माघासिते त्वाष्ट्रभे॥ सप्तम्यां गुरुवासरे युजितथासिद्धौ प्रयागाश्रमाच्छ्रीमद्भूसुरराज पुण्यसदनाद्रामावतारः कृती"॥

(चौ०) विमल सलिल, निर्मल नभ आसा। शुचि सन्तन मन मोद हुलासा॥ प्रगटे रवि इव करुणाकन्दा सन्तसरोजन प्रद-आनन्दा॥ (छं०) अवतरे परेशा मनहुं दिनेशा सुत द्विजेश तनुधारी। पूजित शिव-शेषा शुभ उपदेशा तारकमन्त्र प्रचारी॥ कलिकलुष विनाशी प्रेमप्रकाशी सुखराशी दुखहारी। प्रभुइच्छाचारी स्ववश विहारी जगजीवन उपकारी॥ रक्षक श्रुतिसेतू सतकुलकेतू बन्दित सदा अमानं। निगमादि-सुगीतं चरित पुनीतं भवभय शमन निदानं॥ सेवितवरचरणं चातुरवरणं शरणदकृपानिधानं। प्रद "मणिरसरंग" हिं सियबर संगहिं प्रेमभक्ति वरदानं॥

(चौ०) बपु बुधिविमल बढ़ैं केहि भांती। जसशशि, पाइ पक्षसित-राती॥ आठ बर्ष के भे मतिवाना। भयो यज्ञ उपवीत विधाना॥

आठ बर्ष की अवस्था में विद्या आरंभकर चार बर्ष में ही ऐसे पण्डित होगए कि प्रयाग निवासी पण्डित लोग अब आपको अधिक नहीं पढ़ा सकते थे। तब बारह बर्ष की अवस्था में प्रभु श्रीकाशी जी आए।

(चौ०) तहां वेद बेदान्त विशेषा। सकल किये करतल अवशेषा॥ आप सन्यासी के शिष्य होके "स्मार्त" रीति से अपने धर्म कर्म में प्रवृत्त हुए। प्रथम आपका नाम श्रीरामदत्त ऐसा था; किसी दण्डी विद्वान् के समीप रहके ब्रह्मचर्य्य युक्त बिद्या पढ़ते थे॥ एक दिवस स्वामी श्रीराघवानन्द जी के पास प्राप्त होके प्रणाम किया; आप कृपा दृष्टि से देख भाबी बार्ता को जान के कहने लगे कि "तुम्हारे शरीर का तो आयुष भी पूर्ण हो चुका पर अभी लों तुम हरि शरणागत न हुए!"। यह सुन, आके, उन दण्डी जी से सब बात आपने कही। दंडी विज्ञ तो थेही उस बात को सत्य बिचार के बोले कि "बात तो सत्य है परन्तु उपाय मेरे किये न हो सकैगा तुम उन्हीं महानुभाव जी के शरणागत होके शरीर की रक्षा करो"। ऐसा हितोपदेश पा के, आप ने श्रीस्वामीराघवानन्द जी को साष्टाङ्ग प्रणामकर बिनय किया कि "हे प्रभो यह शरीर और आत्मा आपको अर्पण है इस्की दोनों लोक में रक्षा कीजिये" तब श्रीस्वामी जी ने श्रीरामषडक्षर मंत्र आदि पंच संस्कार कर रामानन्द नाम दिया और प्राणायाम आदिक रीति बता, उतारने की युक्ति भी सिखा के समाधि में स्थित कर दिया; काल आया देख के चला गया। थोड़ेही काल में आप समाधिस्थ हो गए यह कुछ बड़ी बड़ाई नहीं है क्योंकि आप

थोड़ेही काल में आप जो समाधिस्थ हो गए यह कुछ बड़ी बड़ाई नहीं है क्योंकि आप तो स्वयं प्रभु के अवतार ही हैं; परन्तु यह सब लीला है, सो भी उचित ही है ॥

कुछ काल में आप समाधि से उतर के श्रीमंत्र जाप और गुरू सेवा में तत्पर हुए। श्रीराघवानन्द स्वामी जी महाराज तथा भगवान् रामानन्द जी के परस्पर सत्सङ्ग की शोभा क्या कही जावे; (दो०) "दोउ महान मिलि सोहहीं, सम बसिष्ठ रघुनाथ। उपमा अपर समुद्र जस, सहित ब्रह्मद्रव पाथ ॥"

स्वामी श्री१०८ रामानन्दजीने बहुत तीर्थाटन किया। "श्रीकृष्ण-चैतन्य-चिरंजीवी"("श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु" नहीं) की दया से अष्ट सिद्धि को प्राप्त हुए।

(चौ०) जगत गुरू, आचारज भूपा। रामानन्द राम के रूपा ॥

आप जब पुनः श्रीगुरू दर्शन को गए तो आचारी गुरुभाइयों ने आचार विचार का आग्रह न देख इनको दंड करने के लिये गुरु महाराज से कहा। परन्तु श्रीगुरु जी ने तो आपको यह आज्ञा दी कि "तुम अपना सम्प्रदाय ही अलग प्रचलित करो।"

ऐसाही किया; सो "रामावत" वा "रामानन्दीय" सम्प्रदाय आपका प्रसिद्ध ही है। (दो०) स्वामिहि सेवा वश किये रामानन्द उदार। दै सरवस गुरु रामपुर गवने दशएं द्वार ॥

आप की गुरु सेवा, भजन, साधुगुण, तेज, प्रताप, देख, और श्रीप्रभु के अवतार जान, अपनी सब भजन-संपत्ति सौंप के, अपनी इच्छा ही से दशम द्वार से गमन करके कृपालु श्री राघाधानन्द जी श्रीरामधाम में प्राप्त हुए ।

तब सूर्य्य रूपी श्रीरामानन्द जी काशी रूप आकाश में प्रकाशमान, और पूर्व छप्पै बिषे कथित श्रीअनन्तानन्दादि आपके शिष्य हुए । वेई तेज के स्थान कला शोभित हुईं । इसप्रकार श्रीरामानन्द सूर्य्य ने प्रगट होके कलियुग की कुचालरात्रि को नाश किया तथा प्रबल पाखण्ड रूपी उस-रात्रि-के-अंधकार को भी नाश किया; तब अभक्त भगवत-विमुख छुप रहे ॥

और, आप के शिष्य प्रशिष्य भागवत बेषधारी बैष्णव धूप (घाम) प्रकाश के सरीखा चारो धामों में स्थान स्थान में भर गए । एवं महात्मा सन्त समूह कमलों के सम विकाशमान हुए । ऐसे सूर्य्य रूपी श्रीरामानन्दस्वामी उदित हुए ॥

(क०) "मन्द कलिकाल की कुचाल ते अमन्द पाप फैले पंथ निन्द बेद भक्ति हूं निकन्द के । देखे रघुनन्द जब सबी जन्तु वृन्द दले लीन्हे अवतार तब दायक अनन्द के ॥ सेतु बिसतारे मंत्र तारक प्रचारे किए जीव भवपारे देह धारक स्वच्छन्द के । सन्तसिंधु चन्द ऐसे

करुणा के कंद "रसरङ्ग मणि" बंद पद स्वामी रामानंद के ॥ २ ॥ रामानंद स्वामी से भए न कोई और होने जिनको विदित तीनो लोक में प्रताप है। काम क्रोध लोभ मोह मत्सरादि सुखादखड मर्दन को केशरी ज्यों राजैं करिदाप हैं। विमुख पाखण्डी आन धर्मी तमतोम रवि, अभिमान सागर को कुंभज से आप हैं। रामभक्ति शालिक्षेत्र पोषिबे को वारिद से आश्रित प्रपन्नन के एक माई बाप हैं ॥ ३ ॥"

(चौ०) छायो लोक प्रताप प्रकाशा। कलिकर तब पातक तम नाशा॥ घोर कुपंथ चोर बिलखाने। कुमुद कर्मकांडी सकुचाने॥ रामभक्ति सरसीरुह वृन्दा। रवि लखि भे विकशित सानन्दा॥

(चौ०) सहित तेरहो शिष्य अरामी। राजत श्री रामानँद स्वामी॥ शिष्यशिष्य उपशिष्य समेता। शोभित पूजित कृपानिकेता॥ नित प्रति राम कथा सतसंगा। कहत, बहत जनु दूसरि गंगा॥ तारत जीवन मरत महेसू। सतनु तरत स्वामी उपदेशू॥

अस प्रभु भगवत रामानन्दा। परम धरमतनु जन सुखकन्दा॥ हिय विचार किय कृपा निकेतू। महि दिग विजय करन के हेतु॥ संग शिष्य परशिष्य अनन्ता। तिमि तिहुं सम्प्रदाइ बहुसन्ता॥ आगे फहरत ध्वजा निशाना। तेंहि पर बैठ बीर हनुमाना॥ "जै जै सियाराम"

धुनिछाई। चले विजय कर शंख बजाई॥ (दो०) खंडन किये कुपन्थ ये, यथा योग दै दंड। सत मारग आने तिनहिं, करि उपदेश अखंड॥ चारिउ वरण आश्रम माहीं। कीन्हे "रामभक्त" सबकाहीं॥ राम मन्त्र मन्त्रार्थ विधाना। यथायोग दीन्हे मतिवाना॥ यहिविधि करि दिगविजय उदंडा। थापे 'रघुपतिभक्तिअखंडा'॥ प्रभु जेहि हेतु लिये अवतारा। सत्यसन्ध सोइ किये प्रचारा॥ रामानन्द प्रताप अपारा। को कवि लहै कथन करि पारा॥

"भारी प्रभाव प्रताप रामानन्द को, को कहिसकै? जो परम प्रभु अवतार शारद वदत जस-जाको जकै॥"

"श्रीरामरूप अनूप रामानन्द स्वामी हैं सदा। शुचि ज्ञान दायक ध्यान लायक हरन मल माया मदा॥"

(सो०) शारदशशी समान, कीरति रामानन्द की। पावन पुण्य महान, नाशनि पातक वृन्द की॥

(श्री राम रस रंगमणि)

परमाचार्य्य स्वामी श्री रामानन्द जी का यह चरित "श्री अगस्त्य संहिता भविष्योत्तरखण्ड" में पांच अध्याय से वर्णित है सो श्री काशी कुंज गली के पास "हजारी लाल-गणेश प्रसाद" केहां मिलता है, सूर्य्य प्रभाकर शिला यंत्र सं० १९३५ में छपा। उसी से भाषा में "श्रीरामानन्द यशावली" नामक ग्रन्थ बना है श्रीराम अनन्यसखा, परमहंस श्री ६ सीताशरण जी महाराज ने, श्री ५ रामरसरङ्गमणि जी महाराज से "श्रीरामानन्द यशावली" के नाम से भाषाप्रबन्ध कराके छपवाया है, उससे, तथा मुन्शी श्री ६ तपस्वीराम जी कृत "रमूज़े मिङ्गोवफ़ा" से लेके, संक्षेपतः यह कथा लिखी गई।

(श्लो०) नम आचार्य्यवर्य्याय रामानन्दाय धीमते। मोक्षमार्गप्रकाशाय चतुर्वर्गप्रदाय च॥१॥ पाखण्डै न विदूषितान्स्वविमुखा ञ्ज्ञात्वा कलौ वैजनान्। तत्क-ल्याण परः कृपापरवशस्साकेतवासी स्वयम्॥ रामा-नन्दसुसंज्ञया प्रयजने श्रीपुण्यसद्म द्विजाज् जातस्तं-विनमामि नारदयुतं श्रीरामचंद्रं हरिम्॥२॥ श्रीपुण्य-सदनस्तात स्सुशीला जननी तथा॥ यस्यासीद्रामानन्द-न्तं जगद्गुरुं नमाम्यहम्॥३॥

(सो०) रामभक्ति दातार, ज्ञान विराग विधायनी। सुनतहि भली प्रकार, सुखद मोह तम हारिनी॥ (कथा)

बहुत काल अपुधारण कीन्हे। भूमहँ भक्ति भाव भर दीन्हे॥

	सम्वत विक्रमी	गत कलि	ईसवी सन
आपका परधाम गमन	१४६७	४५११	१४११
	वैसाख शुक्ल तृतीया		

पृथ्वी पर आप १११ * वर्ष पर्य्यन्त विराजमान रहे।

श्लोक। वेदाङ्केन्दुधरासंख्ये (११९४) वर्षे वैक्रमराजके। श्रीमद्रामानुजाचार्यो ह्यन्तर्धानमगा स्स्वयं॥१॥ श्रीम-द्विक्रमवत्सरेऽश्वरसवारीशेन्दुसंख्ये (१४६७) धरां। त्य-क्त्वामाधवमासकेसुदितृतीयायांतिथावुज्वलं॥ धर्मं भा-गवतं विमुक्तिफलकं विन्यस्यजीवेषु वै। रामानन्दसु-देशिकस्समगमत्साकेतलोकं परम्॥२॥

"बहुत काल"। जिनका आयु १६ ही वर्ष की अवस्था में, पूर्ण हो चुका था सो महामुनि यदि १११ वर्ष विराजमान रहे तो "बहुत काल" इसको कहने में शंकाही क्या?

प्रसिद्ध ही है कि आपका समय सिकंदर लोदी (१४८८ ईस्वी,) से पूर्व था॥

"वर्ष शत शत" जो लिखा है (श्री रघुराज सिंह जी ने,) सो न जानूं कैसे? १३५६ से ७०० तो २०५६ में होंगे; यह अभी भी सम्वत् १९६२ ही है। स्वामी जी को अन्तर्धान हुए सैकड़ों वर्ष बीत चुके। नजानूं उनने ७०० किस अभिप्राय से लिखा? इस श्लोक से तो १११ ही (१४६७-१३५६=१११) वर्ष स्पष्ट है॥ इसके अतिरिक्त दो और ने भी "१०० वर्ष से ऊपर" लिखा है॥ इतिहासों से ("१४०० ईसवी") सम्वत १४५७ प्रगट है॥ वह भी इसके समीप मिलता है॥

---

(१) श्रीअगस्त संहिता भविष्योत्तरखण्ड की कथा तो प्रसिद्ध है ही॥

(२) ऐसा भी लिखा है कि "एक कल्प में कलि ४४४७ की भाद्रकृष्णाष्टमी को, श्री १०८ रामानन्द स्वामी श्रीकपिलदेव भगवान् के अवतार, गालवाश्रम के समीप गौड़ ब्राह्मण के पुत्र हो प्रगट हुए; १०८ वर्ष की अवस्था में कलि के ४५५५ वर्ष गत होने पर परधाम को सिधारे॥"

(३) और भविष्य पुराण के "तृतीय प्रतिसर्गपर्व" के चतुर्थखण्ड में लिखा है कि आप श्रीसूर्य्य भगवान के अवतार, 'देवल' मुनि के पुत्र होंगे—

भविष्य पुराण में ये (छः) श्लोक आप के यश में हैं—

"इतिश्रुत्त्वारवेगाथांवैशाख्यांदेवराट्स्वयम्। प्रत्यक्षं भास्करंदेवं ददर्शसहितं सुरैः॥१॥ भक्तिनम्रान्सुरान्दृष्ट्वाभगवांस्तिमिरापहः। उवाचवचनंरम्यं देवकार्य्यपरं शुभम्॥२॥ ममांशात्तनयोभूमौ भविष्यतिसुरोत्तम। सूतउवाच॥ इत्युक्त्वास्वस्यबिंबस्यतेजोराशिंसमन्ततः॥३॥ समुत्पाद्यकृतं काश्यांरामानन्दस्ततोभवत्। देवलस्यच विप्रस्यकान्यकुब्जस्यवैसुतः॥४॥ बाल्यात्प्रभृतिसज्ज्ञानी

रामनामपरायणः। पित्रामात्रायदात्यक्तोराघवं शरणं गतः ॥ ५ ॥ तदातुभगवान्साक्षाच्चतुर्दशकलोहरिः। सीतापतिस्तद्धृदयेनिवासं कृतवान्मुदा ॥ ६ ॥
इतितेकथितं विप्रमित्रदेवांशतोयथा। रामानन्दस्तुवलवान्हरिभक्ते श्चसंभवः ॥७॥ इति भविष्यपुराणे तृतीयेप्रतिसर्गपर्वणि सप्तमाध्यायेश्लोकाः ॥

आप अभक्तों से कभी वार्तालाप (वरन् चार-आंखें भी) नहीं करते थे, परन्तु इतने पर भी, यदि भक्ति भाव देखते बूझते थे चाहे किसी जाति में क्यों न हो तो उस्का बड़ाही आदर करते थे ॥

श्रीकाशीजी में आपकी खड़ाऊं श्रीपंचगंगाघाट पर अभीतक विराजमान हैं ॥

आपने श्रीगंगासागर संगम कपिलदेव स्थान को प्रगट किया जो लुप्त हो गया था।

(दो०) रामानन्द उदार अति, कलिमल नाशनहार। सेवत भक्ति समेतशुभ भुक्तिमुक्ति दातार॥ आचारजवर दिगविजय, जे जन सुनहिं सप्रेम। विजय विभूति विवेक ते, लहहिं भक्ति युतक्षेम॥ (चौ०) अस प्रभु जगपावन वपुधारी। कृपासिन्धु दासन हितकारी॥ ताते तासु जन्म दिन माहीं। जन्म महोत्सव रचे उछाहीं॥

श्रीअयोध्यावासी प्रायः श्रीरामानन्दीय हैं ही,

और अनेक जगहों में आपका व्रत तथा उत्सव होताही है, तथापि श्रीसीताराम कृपासे (१) श्रीकनकभवन के परमहंस श्री६सीताशरण जी महाराज, (२) प्रमोदवन-भूषण पण्डित श्री६रामवल्लभाशरण महाराज जी, (३) और श्रीरामकोट जन्मस्थान में, इन तीनों स्थानों में श्रीरामानन्दजन्मोत्सव विशेष करके होता है ॥

	श्रीरामानुज जी		श्रीरामानन्दजी	
	जन्म	परधाम	जन्म	परधाम
कलि(गत)	४११८	४२३८	४४००	४५११
विक्रमीय सम्बत	१०७४	११९४	१३५६	१४६७
ईसवीसन	१०१७	११३७	१३००	१४११
कितनेवर्ष विराजे	१२०		१११	
१९६२ पर्य्यन्त कितने वर्ष	८८८	७६८	६०६	४९५

दोनों आचार्य्यों के बीच अन्तर १६२ वर्ष

पृष्ठ ४२० तथा ४२७ देखिये ॥

१. श्रीमन्नारायण

२. श्रीलक्ष्मी जी

३. श्रीविष्वक्सेन जी

४. श्री पराङ्कुशमुनिप्रवर, (कार-सूनु श्रीशठकोप जी)

५. श्रीबोपदेव जी

६. श्रीनाथमुनि जी

७. श्रीपुण्डरीकाक्षजी

८. श्रीराममिश्र जी

९. श्रीपरांकुश मुनिजी (द्वितीय)

१०. श्रीयामुनाचार्य्य जी

११. श्रीमहापूर्णाचार्य्य जी

१२. श्रीरामानुजाचार्य्य स्वामी

१३. श्रीकुरेश वा कुरुतारक जी / श्रीगोविन्दाचार्य्य जी

१४. श्रीपराशरभट्ट जी

१५. श्रीलोकाचार्य्य जी

१६. श्रीदेवाचार्य्य जी

१७. श्री शैलेशाचार्य्य जी

१८. श्रीवरवर मुनि जी

१९. श्रीपुरुषोत्तमाचार्य्य जी

२०. श्रीगंगाधर जी

२१. श्रीसदाचार्य्य जी

२२. श्रीरामेश्वराचार्य्य जी

२३. श्रीद्वारानन्द जी

२४. श्रीदेवानन्द जी

२५. श्रीश्यामानन्द जी

२६. श्रीश्रुतानन्द जी

२७. श्रीचिदानन्द जी

२८. श्रीपूर्णानन्द जी

२९. श्रीश्रियानन्द जी

३०. श्रीहरियानन्द स्वामी
(प्रधानानन्द)

३१. श्रीराघवानन्दाचार्य्य स्वामी जी

३२. भगवान् रामानन्द ॥

---

३२. भगवान् रामानन्द

३३. श्रीसुरसुरानन्द जी

३४. श्रीबलियानन्द जी

३५. श्रीसेउरिया स्वामी जी

३६. श्रीबिहारी दास जी

३७. श्रीरासदास जी

३८. श्रीबिनोदानन्द जी

३९. श्रीधरनीदास जी

४०. श्रीकरुणानिधान जी

४१. श्रीकेवलराम जी

४२. श्रीरामप्रसादीदास जी

४३. श्रीरामसेवकदासजी (परसा)

४४. स्वामी श्री १०८ रामचरण दास महाराज मौद्गल्य ऋषि जी

॥१॥ [श्लोक] "लक्ष्मी नाथ समारंभां नाथ यामुन मध्यमाम् । अस्मदाचार्य्य पर्य्यन्तां वन्दे गुरु परम्पराम् ॥" दीन सीतारामशरण भगवान् प्रसाद ॥

(भ० मा० सिं०)

(२) मुन्शी श्री तुलसी राम जी तथा श्री प्रताप सिंह जी (और H. H. Wilson आदिक इंग्रेजों) ने, श्री१०८ रामानन्द स्वामीजी को श्री रामानुज स्वामी जी से "पांचवां" ही लिखा है; अर्थात् "(१) श्री रामानुज स्वामी (२) श्री देवाचार्य्य जी (३) श्रीहरियानन्द (प्रधानानन्द) जी (४) श्री राघवानन्द जी, और (५) अनन्त श्री रामानन्द स्वामी जी" और बीच के महानुभावों के नामों को उनने छोड़ दिया है॥

(३) अनन्त श्री रामानन्द भगवान् के जन्म का समय तो अनेक (आठ, नव) ग्रन्थों में पाया जाता है; परन्तु आप कितने दिन संसार में विराजे? कब परमधाम को गए? कठिनता यदि है तो इसी के ठहराने में॥

(४) ☞ आप के पिता का नाम, श्री रामानन्द यशावली में "श्री भूरिकर्मा जी" लिखा है। 'भूरिकर्मा' तथा "पुण्य सदन" (श्रीअगस्त-संहिता) एक ही बात है॥

(५) ४२८ वें पृष्ठ की १३ वीं पंक्ति में अंक २ के अन्तर्गत, महीन अक्षरों में जो टिप्पनी चार पंक्तियां लिखी गई हैं, "(४४४७ की, भाद्राष्टमी, गौड़ब्राह्मण, १०८ वर्ष, इत्यादि,)" सो जिस पन्ने में से पाया गया उस पुस्तक की न तो पूरी प्रति ही हाथ लगी, और न उस पोथी का नाम ही जाना जा सका।

(६) श्रीअगस्त संहिता और भविष्य पुराण की कथा की तो इस प्रकार से एकता हो जाती है कि सूर्य्य मण्डल के अन्तर श्रीराम जी विराजे हैं ही, (श्लोक। "सूर्य्य मण्डल मध्यस्थं रामं सीता समन्वितम्। नमामि पुण्डरीकाक्षममेयं गुरु तत्परम्"॥ १॥ इससे, सूर्य्य मंडल ही से, जन-हृदय-तिमिर-नाशक श्रीरामांश अवतार हुआ॥ और काशी से जन्मस्थान की भिन्नता यों नहीं कि श्रीकाशी जी में श्रीगुरुशरणागत होने से अपर जन्म ही जानिये क्योंकि ऐसा कहा ही जाता है। अर्थ विचार से "देवल" तथा पुण्यसदन (भूरिकर्मा) की एकता भी मानिये। शंका न कीजिये। दोनों ग्रन्थों (श्रीअगस्त संहिता तथा भविष्यपुराण) की कथा एक ही समझिये॥

महामुनि श्रीदेवाधिपाचार्य्य स्वामी ।

महामहिमायुक्त श्रीदेवाचार्य्य महाराज जी एक समय श्रीकाशी यात्रा के मार्ग में किसी ग्राम में एक वृक्ष के समीप दशम स्कन्ध (श्रीभागवत) कह रहे थे; कथा में "यमलार्जुन" का प्रसंग था; ज्योंही अध्याय पूरा हुआ कि उसीक्षण पास का वृक्ष, किसी प्रतक्ष कारण के बिनाही, अकस्मात गिर पड़ा अड़ररधाम ! और साथही आश्चर्य्यमय यह घटना भी हुई कि एक विमान और एक पुरुष सब सन्तों ने देखा; उस मनुष्य ने आप के चरणसरोज की बन्दना करके कहा कि मैं बड़ाही पापी, नरक से हो आके, यही वृक्ष होके, यहां था; इस समय श्री हरि कथा के श्रवण से मैं निष्पाप हो, श्री भगवत कृपा से इस विमान पर चढ़ परधाम को जाता हूं, यह आप केही दर्शनों का प्रभाव है ॥

श्रीहरियानन्द आचार्य्य स्वामी ।

हरि-आनन्द में सदा छके हुए श्री६ हरियानन्द जी ने एक समय पुरुषोत्तमपुरि में जा आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को रथारूढ़ श्रीजगन्नाथ जी के दर्शन किये; चलते चलते रथ रुक गया था; खींचे ठेले से हिलता बढ़ना न था । आपने पुकारके कहा कि "सब कोई रथ को छोड़ दो, श्रीजगदीश कृपा से रथ आपही चलेगा।" ऐसाही हुआ, सौ पग तक रथ आपही दौड़ा

गया। जय जय कार ध्वनि छा गई। ऐसे ऐसे इतिहास आप के यश के अनेक हैं॥

(छ०) चरणकमल बन्दौं कृपालु हरियानंद स्वामी। सर्वसु सीताराम रहसि दशधा अनुगामी॥ बालमीक वर शुद्ध सत्व माधुर्य्य रसालय। दरसी रहसि अनादि पूर्व रसिकन की चालय॥ नित सदाचार मैं रसिकता अति अद्भुत गति जानिये। जानकि वल्लभ कृपा लहि शिष प्रति शिष्य बखानिये॥ (श्रीयुगलप्रिया, रसिक भक्तमाल)

आचार्य्य स्वामी श्री १०८ राघवानन्द जी।

कुछ तो आप का प्रताप, स्वामी अनन्तश्री रामानन्द जी के चरित में लिखा ही जा चुका है (पृष्ट ४१४) एक समय एक राजा ने अपने लड़के को शिष्य करने के लिये बहुत प्रार्थना कहला भेजी; उसी क्षण और दो जनों की भी प्रार्थना विनय सुनके, कृपासिन्धु जी एकही समय तीनों ठाम तीन रूप से गए। उस दिन तो किसी ने यह भेद न पाया, पर दूसरे दिन सब वार्त्ता प्रसिद्ध हो ही तो गई॥

आपके चरित का पार भला कौन पासकता है, कि जिनके शिष्य स्वयं प्रभु (भगवान् रामानन्द) ही हुए॥

(छ०) रसिक राघवानन्द बसैं काशी प्रस्थाना। गुरु रूप शिव लये दये रसिकाई ध्याना॥ काल करालहि हटकि शिष्य किय रामानन्दा। प्रगटी भक्ति अनादि अवध गोपुर स्वच्छन्दा। आचारज को रूप धरि जगत उधारन जतन किय। महिमा महाप्रसाद की प्रगटि रसिक जन सुक्ख दिय॥ (श्रीयुगलप्रिया, रसिक भक्तमाल)

(१/८ ५/४ १/२) छप्पै।

अनन्तानन्द पद परसिकैं लोकपाल से ते भए॥ योगानन्द[1] गयेश[2] करमचन्द[3] अलह[4] पैहारी[5]। सारी रामदास[6] श्रीरंग[7] अवधि गुण महिमा भारी॥ तिनके नरहरि उदित मुदित मेहा मंगलतन। रघुबर यदुबर गाइ विमल कीरति संच्यो धन॥ हरि भक्ति सिन्धु बेला रचे पानि पद्मजा सिर दए। अनन्तानन्द पद परसिकैं लोकपाल से ते भए॥ ३२॥ (३७/२१३)

"मेहा" पाठन्तर "महा" भी है। "मेह"=मेघ। "बेला"=मर्य्यादा; बेरा, नावबेरा; इति। "पद्मजा"=श्रीलक्ष्मीजी।

वार्त्तिक तिलक ।

श्री अनन्तानन्द जी ।

श्रीअनन्तानन्द जी महाराज के चरणसरोज के बिमल रज की स्पर्श करके, अर्थात् चरणशरण होके, लोकपालों के सदृश जीवों के लोक परलोक में रक्षक श्रीभक्त ये सब हुए–श्रीयोगानन्द जी[१]; श्रीगयेशजी[२]; श्रीकर्मचन्द जी[३]; श्रीअल्ह जी[४]; श्रीपयहारी कृष्णदास जी[५]; श्रीसारीरामदास जी[६]; श्री श्रीरंग जी[७]; ये सब सद्गुणों के तथा भारीमहिमा के सीमा हुए। तिन्ह के* शिष्य मङ्गल स्वरूप आनन्द के मेघ श्री नरहरिदास जी प्रगट हुए, जिन्हने, श्रीरघुबर कृपाल जी तथा श्रीयदुबर जी, (दोनों) के सुयश गान करके, निर्मल कीर्त्ति रूपी धन का संचय किया ॥ श्रीअनन्तानन्द जी ने ये शिष्य † ऐसे किये कि जो हरि भक्ति रूपी समुद्र के बेला (मर्य्यादा) ही हुए; और पद्मजा अर्थात् श्रीजानकी जी महारानी ने, आपके भजन से प्रसन्नतापूर्वक प्रगट होके श्रीअभयकरकमल आपके मस्तक पर रक्खा ॥

*तिन्ह के अर्थात् श्रीअनन्तानन्दजीमहाराज के शिष्य; और, कोई २ महात्मा ऐसा भी लिखते हैं कि श्रीश्रीरंग जी के शिष्य।

(कवित्त) "रामानन्द स्वामी जू के शिष्य श्री अनन्तानन्द, शीतल सु चन्दन से, भक्तन अनन्दकर। सन्तन के मानद, परानँद मगन मन मानसी स्वरूप छवि सरसिमरालवर॥ जनक लली की कृपापात्र चारुशीला. अली, रूप में अभिन्न भुंजें रंगभूमि लीला पर। ऊपर समाधि; उर अमित अगाध नैन अँसुवा स्रवत, उमगत मानों सुधासर॥" (रसिक भक्तमाल)

† अथवा, यह भी संभव है कि, श्रीअनन्तानन्दजी ने "भक्तिसिन्धु-

बेला" नामक कोई ग्रन्थ ही रचा हो। अथवा, श्रीसीताराम जी की भक्ति रूपी अगाधसिन्धु में बिहार करानेवाले बेला अर्थात् बेरा (नाव-बेरा) रूपी ये शिष्य सब हुए। इन महात्माओं से भक्ति की इति है॥

कहते हैं कि आप एक बेर संभर प्रदेश में पहुँचे वहां के राजमाली ने आपके साथ के सन्तों को बिही के फल लेने से रोक दिया। दुःखित हो सन्तों ने आप से कहा; दूसरे दिन बिही एक भी न पाया गया। राजा ने सब वृत्तान्त सुन के कारण जाना।

श्रीस्वामी जी के शरणागत हुआ। इस प्रकार से वह सारा देश भगवतभक्त हो गया॥

श्रीश्रीरंगजी।

(१५४/८४२) टीका कवित्त।

द्योसा एक गांव तहां श्रीरंग सुनांव हुतो, बनिक सरावगी की कथा लै बखानिये। रहतो गुलाम गयो धर्मराज धाम, उहां भयो बड़ो दूत कही "सुनु अरे बानिये! आए बनिजारे लैन देख तूं दिखावैं चैन; बैल शृङ्ग मध्य पैठि मारे पहिचानिये। बिनु हरि भक्ति सब जगत की यही गति, भयो हरि भक्त श्रीअनन्त पद ध्यानिये॥ ११६॥ (६२१-५१३)

वार्त्तिक तिलक।

जयपुर में 'द्योसा' नामक एक ग्राम है, वहां प्रथम सरावगी मत के बनिये के घर में जन्म श्रीरङ्गजी का

था; इनके श्रीरामभक्त होने की कथा यों है, कि इनके गृह में एक टहलुआ था, वह मरके श्री धर्मराज जी के लोक में एक बड़ा यमदूत हुआ।

वह एक दिन इसी देउसा गावँ में, यमराज का भेजा आया; और पूर्व परिचय से श्रीरङ्ग के सामने प्रत्यक्ष होके बोला कि "रे बनिया! सुन, तुझे एक कौतुक दिखाता हूं; देख ये जो बनजारे यहां अन्नादिक लेने आए हैं, उनमें से एक का प्राण लेने मैं आयाहूं; सो उसी के बैल की सींग पर बैठ के मैं अभी अभी उसको मारे डालता हूं, तू देख के समझ लेना और जान्ना कि श्रीसीताराम जी की भक्ति बिना सब जगत के लोगों की इसी प्रकार की नीच मृत्यु होती है। इस घटना को प्रत्यक्ष देख चुकने पर यदि तुझे हरिकृपा से चेत हो आवे तो श्रीअनन्तानन्दस्वामी का शरण लेना॥"

श्रीरङ्ग जी उस ठिकाने उस समय गये और देखा कि बनजारे को उसी के बैल ने अपनी सींगों से, इन के देखतेही देखते, पेट चीर के मार डाला।

यह घटना देख, इनको वस्तुतः भय तथा ज्ञानवैराग्य हुआ; और, अपने कुल के सब अनाचारों को त्याग के, श्रीअनन्तानन्दस्वामी के चरणशरण में आ, श्री राममन्त्रादिक पंच संस्कार ग्रहण कर, गृहस्थाश्रम ही में रहके, आप बड़े महात्मा और परम भक्त हो गए॥

(११५/८७९) टीका । कवित्त ।

सुतको दिखाई देत भूत, नित सूख्यो जात, पूछें, कही बात, जाइ वाके ठौर सोयो है । आयो निशि मारिबे को धायो यह रोष भर्‌यो, "देवो गति मोकों" उनि बोलिके सुनायो है ॥ "जाति को सोनार पर नारि लगि प्रेत भयों, लयों तेरो शरण मैं ढूंढि जग पायो है" । दियो चरणामृत लै, कियो दिव्य रूप वाको अतिहीं अनूप, सुनो भक्ति भाव गायो है ॥ ११८ ॥ (६२९-५११)

वार्त्तिक तिलक ।

कुछ कालान्तर की बात है कि श्रीरंग जी के पुत्र को एक प्रेत रात में दिखाई देता था; जिसके भय से वह लड़का सूखा जाता था; आपने उससे दुर्बलता का कारण पूछा । लड़के ने बात सब कही ।

जहां वह पुत्र सोता था वहीं स्वयं आप भी जा सोए; प्रेत जिस समय आया करता था अपने उसी समय पर आही तो पहुंचा । आप क्रोध युक्त हो, कोई आयुध लेके, उसे मारने दौड़े ।

उस प्रेत ने कहा कि "मुझे आप इस दुष्ट योनि से छुड़ा के शुभ गति दीजिये; मैं इसी ग्राम का अमुक सोनार था, परस्त्री में प्रीति करने से प्रेत हुआ हूं । मैं अपनी गति के लिये संसार में ढूंढ़ता ढूंढ़ता आपही को समर्थ जान के शरणागत हुआ हूं ।

यह सुनतेही, आपने दया करके श्री चरणामृत देके,

उसको उस अधम योनि से छुड़ाके दिव्य रूप कर दिया।

आपके पास श्रीपीपा जी भी कृपा करके आए थे सो कथा श्रीपीपाचरित में आवेगी ॥

सुनिये, श्रीश्रीरङ्ग जी की भक्ति भाव का अत्यन्त अनूप प्रभाव इस प्रकार से गान किया गया है ॥ और आप के चरित्र बहुत हैं पर यहां इतनेही कहे गए ॥

(१५९/८४२) छप्पै ।

निर्वेद अवधि कलि कृष्णदास, अन परिहरि पय पानकियो ॥ जाके सिर कर धर्यो, तासु कर तर नहिं अड्ड्यो। अर्प्यो पद निर्वान सोक निर्भय करि छड्ड्यो॥ तेज पुंज बल भजन महा मुनि ऊरधरेता। सेवत चरण सरोज राय राना भुवि जेता॥ दाहिमा वंश दिनकर उदय, सन्त कमल हिय सुख दियो। निर्वेद अवधि कलि कृष्णदास अन परिहरि पय पान कियो ॥ ३३ ॥ (३८/२१३)

"निर्वाण"=मोक्ष, मुक्ति। "निर्वेद"=वैराग्य, विराग।

"भूविजेता"=पृथ्वी को जीतनेवाले। "ऊर्द्धरेता"=जिसका वीर्य कभी न गिरे, ब्रह्माण्ड पर चढ़ा जावे। पाठान्तर "सोच" (उस्को)

पैहारी श्रीकृष्णदास जी ।

वार्तिक तिलक।

कलियुग में तीव्र-वैराग्य-की-सीमा श्रीकृष्णदास जी महाराज अन्न को त्याग के केवल दूध ही पिया करते थे। और योग ज्ञान भक्ति निधान सिद्ध कैसे हुए कि जिस जनके सीस पर करकमल रक्खा, उसके हाथों के नीचे आपने अपना हाथ नहीं ओड़ा (पसारा) अर्थात् उससे कभी कुछ न लिया।

और उस जन को संसार के सब शोकों से निर्भय ही कर छोड़ा, तथा अन्त में मोक्षपद दिया।

तेज के पुंज, श्रीरामभजन के महा बल से युक्त, महामुनि और ऊर्द्धरेता थे। जिनके चरणसरोज की सेवा, पृथ्वी के जीतनेवाले अनेक राजा राना किया करते थे। "दांहिवां ब्राह्मणों" के वंशमें सूर्य्य सम उदित होकर कमलरूपी समस्त सन्तों के हृदय को आपने आनन्द दिया प्रफुल्लित किया॥

जोकि आपने सर्वदा अन्न को त्याग के दुग्ध ही पान किया, अतएव आपकी पयहारी (पयोहारी) संज्ञा प्रसिद्ध हुई है।

जोकि आपने किसी शिष्य से कदापि कुछ न लिया; और अपने शिष्यों को जीवनमुक्त ही कर दिया, इसीसे टीकाकार श्रीप्रियादास जी ने आदि ही में (पृष्ठ ४४, कवित्त १ में) यह पद लिखा है कि—

"गुरू गुरुताई की सचाई लै दिखाई जहां गाई श्रीपैहारी जी की रीति रंग भरी है"।

(दो०) गुरू तो ऐसा चाहिये शिख सों कछू न लेय।
शिष्यहुं ऐसा चाहिये तन मन धन सब देय ॥ १ ॥

(१५७/८४२) टीका कवित्त।

जाके शिर कर धस्यो, तातर न छोड्यो हाथ दीनो बड़ो वर, राजा कुल्हू को जु साखिये। परवत कंदरा में दरशन दीयो आनि दियो भाव साधु हरि सेवा अभिलाखिये॥ गिरी जो जलेबी थार मांझ ते उठाई बाल, भयो हिये शाल बिन अरपित चाखिये। लै करि खड़ग ताहि मारन उपाइ कियो, जियो संत ओट, फिरि मोल करि राखिये॥ ११९॥ (६२९—५१०)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीपयहारीजी ने जिस शिष्यके माथे पर हाथ रक्खा उस्के हाथों के नीचे अपना हाथ कभी न पसारा (न छोड़ा); और बड़ा भारी वर 'भक्ति-मुक्ति' सो दिया; उस्में कुल्हू देश का राजा साक्षी है, कि जिस्को आपने आके परवत के कन्दरे में दर्शन औरराज्य दे, शिष्य कर, भावभक्ति से उस्को पूर्ण कर दिया, कि जिससे श्रीसीताराम जी तथा भक्त सन्तों की सेवा सदा किया करता था; उस्से तृप्त नहीं होता था। वरञ्च सेवाभिलाष ही से भरा रहता था॥

एक समय सन्तों का भण्डारा था; उसी में जिलाबियों का थार श्रीसीतारामजी के मन्दिर में जा रहा था, उसीथार में से दो एक जिलेबी गिर पड़ीं; सो भक्त राजा के छोटे से बालक ने उठा के मुख में डाल लीं

राजा को देखतेही हृदय में अति सन्ताप हुआ कि यह हमारा सुत होके, बिन भगवदर्पण की हुई जिलाबियां इसने खालीं। इस्से खड्ग लेके उस्को मार डालना चाहा; तब सन्तों ने आके उस्को मांग के अपना करके, उस्की रक्षा की॥ फिर सन्तोंने कहा कि यह बालक अब हमारा हो गया; इस्का मूल्य हम को देके इस्को तुम अपने ही पास रक्खो॥

(१५६) टीका कवित्त।

नृपसुत भक्त बड़ो अब लौं बिराजमान साधु सनमान में न दूसरो बखानिये। संत बधू गर्भ देखि उभै पनवारे दिये, कही अर्भ इष्ट मेरो ऐसी उर आनिये॥ कोऊ भेषधारी सो ब्योहारी पग दासिन को कही कृपा करो कहा जानैं और प्रानिये। ऐवै तजिदेबो क्रिया देखि जग बुरी होत जोति बहु दई दाम राम मति सानिये॥ १२०॥ (६२१-५०१)

"पनवारे"=पत्र, पत्तल। "पगदासिन" पनही, पगरखी, जूतियां। "जोति बहु दई"=हृदय मे बहुत प्रकाश दिया, बहुत ज्योति दी; बहुत जोति युक्त दाम सुवर्ण दिया; जोतने बोने को भूमि तथा-खेती की सामग्रियां दीं। "अबलौं"=अब तक अर्थात् श्रीप्रियादास जी के समय तक "अर्भ=अर्भक, बालक॥

वार्त्तिक तिलक।

कुल्हू के राजा का पुत्र बड़ा भक्त, साधुओं की सेवा सन्मान करने में अद्वितीय "अबतक विराजमान" है

भंडारे में एक गृहस्थाश्रमी सन्त की बधू को गर्भवती देख, उसको दोहरा पारस (दो पनवारे) देकर, आपने यह कहा कि इस गर्भ में जो बालक है, वह मेरा इष्ट अर्थात् भगवद्भक्त है, उसके लिये मैं इस दूसरे पत्र के पदार्थ अर्पण करताहूं ।

कालान्तर में वस्तुतः उस गर्भ से हरि भक्त पुत्र ही हुआ।

एक मनुष्य सन्तों का बेष बनाए, पगरखियां (पनहियां) बेचा करता और अति दरिद्रही बना रहता था। भक्त राजा को उसपर दया आगई उस्से बोले कि "आप तो कृपा करके कंटकादि से रक्षा करने के हेतु यह व्यापार करते हैं, परन्तु और जीव इस बात को कैसे जान सकें ? सब जगत-के-लोगों को यह व्यवहार देखके अति अनुचित लगता है, अतः इस कर्म को त्याग दीजिये" । ऐसा कहकर बहुत जोति, भूमि जोतने बोने खेती करने को, (अथवा) बहुत जोति युक्त दाम सुवर्ण, तथा और द्रव्य देकर फिर कहा कि "श्रीसीताराम जी के चरणों में मन लगा के भजन कीजिये" ।

वह वैष्णव-वेष-धारी उस कर्म को तजकर श्रीरामजी में लग गया और सन्तों की सेवा सन्मान करने लगा ॥ भक्तराज की दया की जय, श्रीपैहारी जी महाराज के प्रभाव की जय ॥

उस राजा के बंश का राजकुमार ("नृपसुत") श्रीप्रियादास जी महाराज के समय (सम्बत १७६९) पर्यन्त विराजमान था ॥

पुनः, श्रीपैहारी जी ने गलता तथा आमेर के कनफटे वैष्णवद्रोही-योगियों को अपनी सिद्धता से उस मठ से निकाला—

रात भर रहने के लिये उस जगह आप गये थे परन्तु उन बिमुख योगियों ने कहा "यहां से उठ जाव" तब आप ने अपनी धूनी की आग कपड़े में बांध ली और दूसरी ठौर जा बैठे, वहीं आग कपड़े में से रख दी। कपड़े का न जलना देख के योगियों का महंत बाघ बन कर आप पर झपटा। आप ने कहा "तू कैसा गधा है" तुरंत वह गधा हो गया और अपने बल से मनुष्य न बन सका। और सब योगियों के कान के मुद्रे कानों से निकल २ आप के पास पहुंच के ढेर लग गये। आमेर का राजा पृथ्वीराज आप की सेवा में जाकर बड़ी प्रार्थना करने लगा तब आपने गधे को फिर आदमी बना के आज्ञा दी कि इस जगह को तुम सब छोड़ के अलग रहो और लकड़ियां इस धूनी में पहुंचाया करो। उन सबों ने स्वीकार किया और राजा पृथ्वीराज भी श्री पैहारी जी का चेला हो गया; और तभी से गलता आप की प्रसिद्ध गादी हुई॥

बन में गऊ आप से आप दूध श्री पैहारी जी को देती थीं। आप ने आमेर की एक गणिका को भी चेताया था जिसने परम गति पाई॥

श्रीयोगानन्द जी ।

आप श्री अनन्तानन्द जी के शिष्य थे। और महात्माओं ने आप को सांख्य शास्त्र के कर्त्ता श्री कपिल भगवान का अवतार भी लिखा है इसी से आप योगानन्द नाम से प्रख्यात हुये ॥

श्रीगयेश जी ।

श्री गयेश जी श्री अनन्तानन्द जी के कृपापात्र अर्थात् श्री रामानन्द स्वामी जी के पौत्र शिष्य थे। आप की भक्ति की प्रशंसा किस से हो सक्ती है ॥

श्री कर्मचन्द जी ।

श्री अनन्तानन्द जी महाराज के शिष्य श्री कर्मचंद जी बड़े नामानुरागी साधु सेवी तथा गुरुनिष्ठ थे ॥

श्रीअल्ह जी ।

श्रीअल्ह जी श्री अनन्तानन्द जी के शिष्य थे। आप की कथा (आंब की डाल झुक आने की, ५४ वें मूल; २४८ वें कवित्त, में) आगे आवेगी ॥

दूसरे श्री अल्ह जी, श्री कोल्ह जी के भाई का वर्णन, १३९ वें मूल में होगा ॥ तथा श्री कर्मचन्दजी के पुत्र श्री दिवाकर जी को ॥

श्री सारीरामदास जी ।

कोई "सारीरामदासजी" एक ही नाम लिखते हैं,

ओर किसीने "सारीदास" और "रामदास" दो व्यक्ति कहे हैं, अस्तु, आप श्री अनन्तानन्द जी महाराज के शिष्य (पृष्ट ४३६) थे। एक समय आप कृपा करके श्रीचित्रकूट जी के पास "त्वरी" नाम के ग्राम में, वहां के लोगों को विशेष करके चेताने गए, क्योंकि उस गांववाले बैष्णवों-के-द्रोही थे।

एक के द्वारपर आप पहुंचे, उस अभागे ने खड़े भी न रहने दिया; आप नदी तट पर जा ठहरे। उसी दिन वहां के राजा का पुत्र मर गया। जब उस्को लोग नदी तट पर ले गये तो आप ने उन लोगों से कहा कि "यदि तुम्हारा राजा और ग्रामबासी लोग आज से वैष्णव सेवा की प्रतिज्ञा करैं तो अनन्त शक्ति वाले करुणाकर श्री सीताराम जी से हम इस लड़के को पुर्नजीवित होने की प्रार्थना करें।"

ग्राम बासियों सहित राजा ने सुबुद्धि मन्त्रियों के कहने से वही दृढ़ प्रतिज्ञा की; तब साधु चरणामृत (अपना पदतीर्थ) देकर आप ने उस लड़के को जिला दिया।

इस प्रकार से उस प्रदेश को आपने चेता कर हरिभक्त कर दिया।

(चौ०) "सन्तबिटप सरिता गिरि धरनी, परहित हेतु सबन्ह की करनी॥ हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम तुम्हार सेवक असुरारी॥"

सन्त कृपा की जय॥

३७ वें मूल (पृष्ट ४३५।४३६) में श्री अनन्तानन्द जी के शिष्यों के नाम कह आए हैं

१. श्रीयोगानन्द जी	५. श्रीपैहारी कृष्णदास जी
२. श्रीगएश जी	६. श्रीसारीरामदास जी
३. श्रीकर्मचन्द जी	७. श्री श्रीरंग जी
४. श्रीअल्ह जी	

सो, इनकी चर्चा ऊपर हो चुकी. अब श्रीनरहरिदास जी की वार्ता सुनिये । और तब, श्री पैहारी जी के शिष्यों के नाम ३९ वें मूल में ॥

श्रीनरहरिदास जी ।

किसी किसी ने श्रीनरहरि दास जी को श्री श्रीरंग जी का शिष्य लिखा है; और कोई कोई आप को, श्री-अनन्तानन्द जी का पौत्र शिष्य नहीं, वरंच स्वयं श्री अनन्तानन्द जी ही का शिष्य लिखते हैं ।

किसी का लेख है कि यही महाराज श्रीनरहरिदास जी श्री गोस्वामी तुलसी दास जी के गुरु थे; और किसी का मत है कि नहीं, श्री गोस्वामी जी के गुरु श्रीनरहरिदास जी तो, और ही थे, वे श्री गोपाल दास जी बाराहक्षेत्र बासी के शिष्य थे ।

अस्तु, श्रीनरहरिदास जी एक समय श्री जगन्नाथ जी के दर्शन को गए, वहां आपने सोचा कि "श्री-ठाकुर जी को यदि साष्टाङ्ग दण्डवत करूं तो दर्शन से उतने समय तक असह्य विक्षेप होगा," इस्से आप उलटे हो पड़ रहे; पण्डों ने यह अनाचार देख उनके

पांव पकड़ घसीट के मन्दिर के बाहर कर दिया। पर, श्री जगन्नाथ जी की कृपा युक्त आज्ञा से सबों ने आपका बड़ा आदर सन्मान किया॥

(१५९/८४२) छप्पै।

पैहारी परसाद तें, शिष्य सबै भये पार कर॥ कील्ह[१], अगर[२], केवल[३], चरण[४], ब्रतहठी नरायन[५],। सूरज[६], पुरुषा[७], पृथू[८] तिपुर[९] हरि भक्ति परायन॥ पद्मनाभ[१०], गोपाल[११], टेक[१२], टीला[१३], गदाधारी[१४],। देवा[१५], हेम[१६], कल्यान[१७], गंगा[१८] गंगासम नारी॥ बिष्णु दास[१९], कंन्हर[२०], रंगा[२१], चांदन[२२], सबीरो[२३] गोबिँद पर। पैहारी परसाद तें, शिष्य सबै भये पार कर॥ ३४॥ (३८/२११)

'गोबिँदपर"=श्रीगोबिन्दपरायण, हरिभक्त।

वार्त्तिक तिलक।

पयहारी श्रीकृष्णदास जी के ये सब शिष्य, श्रीगुरुप्रसाद से, जीवों को संसारसागर से पार उतारनेवाले और श्रीसीतारामभक्ति में परम परायण हुए—

१. स्वामी श्रीकील्हदेव जी	१५. श्रीदेवा पण्डा जी
२. स्वामी श्री ६ अग्रदेव जी	१६. श्रीहेमदास जी
३. श्रीकेवलदास जी	१७. श्रीकल्याण दास जी
४. श्रीचरण दास जी	१८. श्रीशरीर श्रीगंगाबाई जी, श्रीगङ्गाजी के समान; अथवा, श्रीगङ्गा दास जी तथा श्रीगंगादास जी सो श्रीगंगा जी के सदृश।
५. श्रीव्रतहठी नारायण जी	
६. श्रीसूर्य्य दास जी	
७. श्रीपुरुषा जी (पुरुषोत्तमदास)	
८. श्रीपृथु दास जी	
९. श्रीत्रिपुर दास जी (त्रिपुरहरि)	
१०. श्रीपद्म नामजी	१९. श्रीविष्णुदास जी
११. श्रीगोपालदास जी	२०. श्रीकान्हर दास जी
१२. श्रीटेकराम जी	२१. श्रीरंगा राम जी
१३. श्रीटीलाजी	२२. श्रीचांदन जी
१४. श्रीगदाधारी (गदाधरदास) जी	२३. श्रीसबीरी जी ॥

एक महात्मा ने लिखा है कि (२४) श्री गोविन्द दास नाम के भी एक शिष्य श्रीपैहारी जी के थे ॥

(१६० / ८४२) छप्पै।

गांगेय मृत्यु गंज्यो नहीं, त्यों कील्ह करन नहिं कालबश ॥ रामचरण चिंतवनि, रहति निशि दिन लौ लागी। सर्व भूत शिर नमित, सूर, भजनानँद भागी॥ सांख्य योग मत सुदृढ़ कियो अनुभव हस्तामल। ब्रह्मरंध्र करि गौन भये हरि तन करनी बल ॥ सुमेर--देव--सुत जग

बिदित, भू बिस्तार्यो बिमल यश। गांगेय मृत्यु गंज्यो नहीं, त्यों कील्ह करन नहिं कालबश ॥ ३५ ॥ ($\frac{४०}{२११}$)

"गांगेय" = श्री भीष्म जी। "गंज्यो नहीं"=नहीं नाश किया। "योग"=अष्टाङ्ग साधन करके मूढ़ विक्षिप्त घोर शान्त और अनुरोध इन पाचो चित्त-की-वृत्तियों को समेट के, केवल संप्रज्ञात योग में आके परमात्मा में प्राप्त होके असंप्रज्ञात समाधि में स्थित हो जाना।

"सांख्य" शास्त्र – चौबीस तत्त्वमय प्रकृति को जान के उससे पृथक पुरुष को जानना।

वार्त्तिक तिलक।

श्रीकील्हदेव जी।

जैसे श्रीगंगा जी के पुत्र श्रीभीष्म जी को मृत्यु ने अपनी इच्छा से बिनाश नहीं किया, तैसे ही स्वामी श्री कील्ह देव जी को काल अपने वश नहीं कर सका; क्योंकि आप की यह दशा थी कि, श्रीराम सच्चिदानन्द जी के चरणकमल के स्मरण चिन्तवन में रात्रि दिन तैल धारावत एक रस लय लगी रहा करती थी। सम्पूर्ण प्राणी मात्र का सीस आप को देख के नमित हो जाता था; आप भी सर्व प्राणियों में श्री सीताराम जी को अन्तर्यामी जान के सब को सीस नवाते थे; और, आप माया मोह के दल को नाश करने में सूरबीर सन्त, भजनानन्द के भोक्ता, भाग्यशाली थे। सांख्य शास्त्र तथा योगशास्त्र इन दोनो मतों के सिद्धान्तों का सुदृढ़ अनुभव आप को ऐसा था कि जैसे अपने-

हाथ में वर्तमान आंवले के फल का यथार्थ ज्ञान होता है।

अन्त में अपनी इच्छा ही से सुषुमना मार्ग होकर, ब्रह्मरंध्र बेधके, हरि कृपा से अपनी करनी के बल से श्री रामरूप हो गए; अर्थात् सारूप्यमुक्ति को प्राप्त हुए।

श्रीसुमेर देव जी के पुत्र (श्री कील्ह देव जी) ने सर्व जगत में बिख्यात, इस प्रकार का विमल यश भूमण्डल में फैलाया कि, जैसे श्रीभीष्म देव जी ने दक्षिणायन में शरीर नहीं त्यागा बरंच हरिकृपाश्रिता अपनी इच्छा ही से श्री भगवद् धाम को गए; तैसेही, यद्यपि कालसर्प ने आपको तीन बेर काटा, तथापि मृत्यु की तो बात ही क्या है, किंचित विष मात्र तक न चढ़ा॥

यद्यपि श्रीकील्हदेव स्वामी जी विरक्त थे तथापि आपको "सुमेर-देव-सुत" कहने का तात्पर्य्य यह है, कि इनके सम्बन्ध से उनका नाम कहके, श्री १०८ नाभास्वामी जी ने श्रीसुमेरदेव जी को भी भक्तमाल के भक्तों में गिन्ती किया, सो आगे टीकाकार भगवद्धाम जाना श्री सुमेरदेव जी का बर्णन करेंहींगे॥

(१६१/८४२) टीका। कवित्त।

श्री सुमेरदेव पिता सूबे गुजरात हुतें भयो तनु पात, सो बिमान चढ़ि चले हैं। बैठे मधुपुरी कील्ह मानसिंहराजा ढिग, देखे नभ तात, उठि कही "भले, भले, हैं"॥ पूछे नृप "बोले कासों?" "कैसे कै प्रकासों;" "कहो;" कह्यो हठ परे, सुनि अचरज रले हैं। मानुष

पठाये, सुधि ल्याए सांच, आंच लागी, करी साष्टाङ्ग बात मानी भाग फले हैं ॥ १२१ ॥ (६२९—५०८)

"आंच"=ताप। "अवरज रले हैं" = आश्चर्य में मिले, आश्चर्य युक्त हुए, आश्चर्य को प्राप्त हुए।

वार्त्तिक तिलक।

श्रीकील्हदेव जी के पिता, श्रीसुमेरदेव जी, सूबे गुजरात के "सूबा" (सूबादार) थे; यद्यपि गृहस्थाश्रम ही में रहे, तथापि परम भगवद्भक्त थे: सो आप वहां ही (गुजरात में ही) शरीर त्याग कर विमान पर चढ़के श्री रामधाम को पधारे; उस समय श्रीकील्हदेव जी मथुराजी में राजा मानसिंह के पास बैठे थे। आपने पिताजी को विमान पर आकाश में जाते देख, उठके, प्रणाम कर बोले कि "बहुत अच्छा, भले, पधारिये"

यह सुन मानसिंह ने पूछा कि "आप किससे बोले?" आपने उत्तर दिया कि "प्रगट कहने की बात नहीं है" परन्तु राजा ने बड़ी नम्रतापूर्वक बड़ा हठ किया कि "कृपा करके अवश्य सुनाइये"। तब आपने पिता जी के श्रीरामधाम पधारने की सब वार्त्ता कह सुनाई।

बड़ा आश्चर्य मान, साँढ़नी पर मनुष्यों को भेज के राजा ने सुधि मँगवाई।

गुजरात से लौट के उन लोगों ने कहा कि "हां, सत्य है, उसी दिन उसी क्षण आप का तन छूटा है"।

यह सुन मानसिंह अपनी अप्रतीति का पश्चात्ताप

कर, श्रीकील्हदेव जी के समीप गया और उसने साष्टाङ्ग दण्डवत करके यह विचारा कि ऐसे त्रिकालज्ञ महानुभाव का संग तथा सेवा मुझे प्राप्त है; सो मेरा अहोभाग्य और पूर्व सुकृतों का फल, तथा श्री करुणाकर प्रभु की विशेष कृपा है ॥

(१२२/८४२) टीका। कवित्त।

ऐसे प्रभु लीन, नहीं काल के अधीन, बात सुनियें नवीन, चाहैं रामसेवा कीजिये। धरी ही पिटारी फूल माला, हाथ डार्यो तहां व्याल कर काट्यो, कह्यो "फेरि काटि लीजिये" ॥ ऐसेही कटायो बार तीनि, हुलसायो हियो, कियो न प्रभाव नेकु सदा रस पीजिये। करि कैं समाज साधु मध्य यों विराज, प्रान तजे दशैं द्वार; योगी थके; सुनि कीजिये ॥ १२२ ॥ (६२१—५०७)

[नव द्वार १।२ नेत्र, ३।४ कर्ण, ५।६ नासिका; ७ मुख, ८ मलद्वार, ९ मूत्रद्वार; १० वां "दशैं द्वार"=ब्रह्माण्ड, ब्रह्मरंध्र मस्तक ॥

वार्तिक तिलक।

श्रीकील्हदेव जी इस प्रकार परब्रह्म श्री सीतापति प्रभु में लीन रहते थे कि काल आप को अपने आधीन करही नहीं सक्ता था। एक समय की यह लोकोत्तर नवीन वार्त्ता सुनिये कि प्रभात में आप श्रीसीताराम जी की पूजा सेवा करने लगे; सो, सुगन्धित पुष्प मालाओं की पिटारी जो पहिले से वहां रक्खी थी, उसमें

एक काला-सर्प शीतलता तथा सुगन्धि के लिये आ-बैठा था। आपने जब, श्रीप्रभु को स्नान चन्दनादिक अर्पण करके फूल लेने के अर्थ, उस पिटारी में हाथ डाला, तब उस सांपने हाथ में काट लिया; फिर हाथ उस्के मुँह के समीप लेजाके आप बोले कि "फिर काट ले, तेरा विष क्या मुझे चढ़ थोड़े ही सकता है; क्योंकि मेरे तन मन में श्रीसीतारामध्यानामृत व्याप्त है"। इस प्रकार केवल एक क्या बरन आनन्द पूर्वक तीन बेर कटवाया, परन्तु किंचित मात्र भी उस काले-सर्प के विष का प्रभाव आपको व्याप्त न हुआ, काहे कि आप तो सदा श्रीरामरूपामृतरसको पान कर मग्न रहते थे॥

पुनः कालान्तर में जब आपने अपनी इच्छाही से श्रीरामधाम को गमन करना चाहा, तब समस्त सन्त-मण्डली को बुला, श्री सीताराम मन्दिर में समाज बैठा, सतकार पूजन कर, मध्य में बिराजमान हो, दशमद्वार से (ब्रह्माण्ड फोर के) प्राण को त्याग, श्री-रामधाम को प्राप्त हुए॥ इस बात को देख सुनके योगी लोग आश्चर्यमान, (इस गति से) थक के रह गए।

ऐसे श्रीरामोपासक की कथा सुन सुन के जगत में जीना योग्य है॥

श्रीसुमेरदेव जी।

श्रीसुमेरदेव जी श्रीकील्हदेव स्वामी के पिता, बड़े

भक्त थे। आप की कथा १२१ वें कवित्त (पृष्ठ ४५३ में लिखी गई है॥

कुल्हू के राजा की कथा श्रीपैहारी जी की कथा के अन्तर्गत (पृष्ठ ४४३।४४४ में) है॥

(१६३/८४२) छप्पै।

(श्री) अग्रदास हरिभजन बिन, काल वृथा नहिँ बित्तयो॥ सदाचार ज्यों सन्त प्राप्त जैसे करि आये। सेवा सुमिरण सावधान, चरण राघव चित लाये॥ प्रसिध बाग सों प्रीति सुहथ कृत करत निरंतर। रसना निर्मल नाम मनहुँ बर्षत धाराधर॥ (श्री) कृष्णदास कृपाकरि भक्ति दत्त, मन बच क्रम करि अटल दयो। (श्री) अग्रदास हरि भजन बिन, काल वृथा नहिँ बित्तयो ३६ (४१/२१३)

"बित्तयो"=बिताया, व्यतीत किया। "धाराधर" =मेघ, जलद। "सुहथ" स्वहस्त, अपने हाथों से। "दयो" = दिया।

स्वामी श्रीअग्रदेव जी।

श्री १०८ अग्रदास स्वामी जी ने श्रीसीताराम जी के भजन बिना किंचित मात्र भी काल व्यर्थ नहीं बिताया। आप का सदाचार किस प्रकार का था कि जैसा पू-

वाचार्य्य सन्तों का हुआ करता; और प्रातःकाल से वे पूर्व के महात्मा लोग जैसे सम्पूर्ण भगवत कर्म कर आए हैं, वैसेही आप भी मानसी तथा प्रत्यक्ष सेवा पूजा और नाम रूप गुण स्मरण करते हुए अपने चित्त की वृत्ति सावधानता पूर्वक श्रीयुगलसर्कार के चरण-कमलों में एकरस लगाए रहा करते थे।

और जो आपके स्थान के समीप पुष्प फलादि युक्त वाटिका थी उसको "श्रीसीताराम विहारस्थल अशोकवन और प्रमोदवन" ही भावना से मानकर उसमें प्रीति करते थे; सो प्रीति आपकी लोकप्रसिद्ध हो गई. क्योंकि आप निज कर कमलों से ही उसकी सब कृत्य, अर्थात् श्री तुलसी आदि वृक्षों का कोड़ना सींचना सूखे पत्रादिकों का बहारना इत्यादि, निरन्तर किया करते थे; और रसना (जिह्वा) से "श्रीसीताराम" निर्मलनाम इस प्रकार से सप्रेम उच्चारण किया करते थे, कि जैसे कोई अलौकिक आनन्द का मेघ मधुर २ शब्द करके बरसता है।

स्वामी श्री १०८ अग्रदेवजीकी इस प्रकार की बाह्यान्तर प्रेमा परा दशा कैसे न हो? क्यों कि आपके श्रीगुरुदेव पयोहारी श्रीकृष्णदास जी ने कृपा करके, मनवचनकर्म तीनों प्रकार की भक्तिभाव, अपना सर्वस्व, देके अटल (अचल) कर दिया था। श्रीअग्रदेव स्वामी जी की अष्टयामीय भावना-रीति-भक्ति की जय॥

(६६४/८७२) टीका। कवित्त।

दरशन काज महाराज मानसिंघ आयो, छायी बाग मांझ, बैठे द्वार द्वारपाल हैं। झारिकै पतौवा गये बाहिर लै डारिबे को, देखी भीरभार, रहे बैठि ये रसाल हैं॥ आये देखि नाभा जू ने साष्टांग करी, ठाढ़े, भरी जल आंखैं, चले अँशुअनि जाल हैं। राजा मग चाहि, हारि, आनिकै निहारि नैन, जानी आप, 'जानी भए दासनिदयाल हैं'॥ १२२॥ (६२९—५०७)

"जानी"=जगत के प्राण श्री जानशिरोमणि प्रभु।

वार्तिक तिलक।

एक समय श्रीअग्रदेव स्वामी के दर्शन करने के लिये (आमेर जयपुर के) महाराज मानसिंह आए; उस समय आप बाटिका ही की सेवा में थे; इससे राजा अपने समाज सहित (बाटिकाही में) गया। अतः द्वारपाल लोग बाटिका के द्वार पर बैठा दिये गए, जिसमें इतर मनुष्यों की भीड़ भीतर न आने पावे। श्रीअग्रदेव स्वामी जी उस क्षण बाटिका के सूखे पत्ते आदि बहार के फेकने के निमित्त बाहर निकल चुके थे; कूड़े को फेंक के जो देखा तो राजसेवकों की भीड़ भाड़ हो रही है और द्वाररक्षक भी द्वार पर बैठे हैं।

अतएव श्रीरामरसिक शिरोमणि स्वामी जी बाहरही एक आम्रवृक्ष के नीचे बैठके श्री प्रभु की मानसी सेवा ध्यान में मग्न हो गए। विलम्ब देख श्री६ नाभा जी

आके साष्टाङ्ग दण्डवत कर सन्मुख खड़े हो, आपकी निस्सीम निरभिमानता सरलता तथा प्रेम-मग्नता देख प्रेम से विह्वल हो गए, नेत्रों से प्रेमाश्रु की धारा चलने लगी। उधर राजा आप के आने का मार्ग देख देख हारके, आप ही आके दोनों महानुभावों की प्रीति की यह विलक्षण दशा अपने नेत्रों से देख, कृतकृत्य हो, उसने यह जाना कि साक्षात् जानशिरोमणि श्रीराम जी ही अस्मदादिक दासों पर दयालु होके "श्रीअग्रदेव" रूप से प्रगट हुए हैं ॥

आप "शृङ्गार रस के आचार्य "श्रीअग्रअली" के नाम से प्रसिद्ध हैं। आप का अष्टयाम, आपकी "ध्यान मंजरी" आप के कुण्डलिया, पदावली इत्यादि प्रख्यात ही हैं। आप के विशेष प्रभाव आदि में मानसी का वर्णन, (पृष्ठ ४८। ५५ में) हो चुका है; और यहां वाटिकाप्रीति प्रसंग कुछ लिखा गया।

श्रीअग्रस्वामी जी के प्रेम की, प्रशंसा कहां तक हो सकती है जिनके कृपापात्र, श्रीभक्तमाल-जी-के-कर्त्ता श्री १०८ नाभास्वामी जी हुए ॥

आप को श्रीजानकी जी महारानी ने कृपा करके दर्शन दिया। आप अपनी इच्छा से तन तज के श्रीसाकेत को पधारे ॥

छप्पै। श्री अग्रदेव अव्यग्रमन अग्र उपासक राम सिय ॥ अष्टयाम कैङ्कर्य्य चाह तन मन में धार्यो।

क्रियो भक्तिरस प्रगट गूढ़-प्रभु-तत्व उचाख्यो ॥ "ध्यान-मंजरी," सरस रसिक-मन मोद प्रबाह्यो । सीताराम अनन्यभाव त्रयबिध निर्बाह्यो ॥ पूर्बाचारज रीति रस-रङ्गमणी हित दामहिय । श्री अग्रदेव अव्ययमन अगू उपासक राम सिय ॥ १ ॥ (श्रीरामरसरङ्गमणि जी)

स्वामी श्री६ नाभा जी

|

स्वामीश्रीअग्रदेव जी

|

पैहारी श्रीकृष्णदासजी

|

श्रीअनन्तानन्द जी

|

भगवान् रामानन्द

गोस्वामी श्री१०८ नाभा जी महाराज का नाम श्रीनारायणदास जी भी (पृष्ठ ५७ में) लिखा जा चुका है । आपकी चरचा पृष्ठ १९ तथा पृष्ठ ५ में भी आई है, एवं ४८ वें से ५७ वें पृष्ठ पर्य्यन्त आप का वर्णन हो चुका है; और यह भी कि भक्तमाल विक्रमीय सम्वत की १७ वीं शताब्दी में, अर्थात् १६४० और १६८० के बीच में, लिखी गई है ।

भगवान् श्रीरामानन्द का समय, (पृष्ठ ४३० में,) 'पन्द्रहवीं शताब्दी' लिख चुके हैं। "श्रीराधाकृष्णदास सम्पादित भक्तनामावली" में भी यही वर्णित है।

☞ स्पष्ट है कि स्वामी श्री १०८ अग्रदेव जी, विक्रमीय सम्वत की सत्रहवीं शताब्दी में बिराजते थे॥

श्री १०८ नाभास्वामी जी ने, पहिले चारो भागवत सम्प्रदायों के चारो आचार्य्यों का वर्णन (पृष्ठ ३७५ से ३९५ तक) किया; फिर अपने निज सम्प्रदाय (श्री "श्रीसम्प्रदाय") की वार्त्ता (पृष्ठ ४११ में) उठाई; पुनः श्रीगुरु परम्परा का वर्णन, स्वामी अनन्तश्री रामानुज जी से लेके, श्री अनन्तानन्द द्वारा, अपने गुरु भगवान् तक, अर्थात् श्री१०८ अग्र स्वामी जी पर्य्यन्त (पृष्ठ ४५६ से ४५९ तक), गान किया; जय जय जय। जब श्रीगुरु यश गा चुके, तब पुनः पीछे लौटकर, अब सब से पुराने (कलियुग ३८८९) आचार्य्य, श्री शङ्करस्वामीजी का वर्णन करते हैं—

(१६५/८४२) छप्पै।

कलियुग धर्मपालक प्रगट, आचारज शङ्कर सुभट॥ उतशृङ्खल अज्ञान जिते अन ईश्वरवादी। बुद्ध कुतर्की जैन और पाखंडहि आदी॥ बिमुखनि को दियो दण्ड, ऐंचि सन्मारग आने। सदाचार

की सींव विश्व कीरतिहि बखाने ॥ ईश्वरांश अवतार महि, मरजादा मांड़ी अघट। कलियुग धर्मपालक प्रगट, आचारज शङ्कर सुभट ॥३७॥ ($\frac{४२}{७१३}$)

"अनीश्वर बादी"=वे नास्तिक लोग, कि जो संसार का कर्त्ता किसी को, ईश्वर नहीं मानते बरन कहते हैं कि स्वयं स्वभावतः सब होता रहता है और बिनशता है। "ऐंचि"=खींचकर। "मांड़ी"=मण्डन किया। "उत्श्टङ्खल"=श्टङ्खला को उत्सादन करनेवाले। "बुद्ध"=बौध।

श्रीशङ्कराचार्य्य जी।

वार्त्तिक तिलक।

कराल कलियुग में अधर्म और अधर्मियों से धर्म को अर्थात् वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, तथा भागवत धर्म को पालन रक्षण करनेवाले परम सुभट श्रीशङ्कराचार्य्य जी प्रगट हुए ॥ किस प्रकार से आपने धर्म पालन किया सो सुभटता वर्णन करते हैं कि जितने उतशृङ्खल अर्थात वेदविदित सनातन-धर्म-परम्परा के उठा देने वाले अज्ञानी अनीश्वरवादी थे, और बुद्धमतावलम्बी तथा कुतर्की जैनमतवादी एवं पाखण्डपरायण आदिक जितने विमुख थे, तिन सब को यथा योग्य दण्ड देके उन कुमार्गों से खींच सनातन सतमार्ग में (ला के, स्थापित करके) चलाया; इस प्रकार की धर्म सुभटता की।

श्रुति-स्मृति-विहित सज्जन-परिगृहीत समीचीन आचरण की सीमा (मर्य्यादा) ही हुए ।

"ईश्वर" के (शङ्कर जी के) अंशावतार प्रगट होके, वेदधर्ममर्य्यादा को आपने मंडन किया कि जो फिर घटे नहीं एक रस बनी रहे । आपकी ऐसी सत्कीर्त्ति सम्पूर्ण विश्व बखान करता है ॥

श्रीशङ्कराचार्य्यजी (श्रीशङ्करांशावतार) दक्षिण देश में प्रगट हुए । स्मार्त मत रक्षक दण्डी सन्यासी थे। मण्डनमिश्र नामक एक ब्राह्मण जिन को किसी ने श्री ब्रह्मा जी का अंशावतार भी लिखा है, बड़े कर्मकाण्डी मीमांसामतवादी थे मानो कर्म ही को वह ईश्वर मानते थे; उनको आपने (श्रीशंकरस्वामी ने) शास्त्रार्थ में निरुत्तर कर शिष्य (भगवत शरणागत) किया ॥ (दो०) बिनु सतसंग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग । मोह गए बिनु राम पद होय न दृढ़ अनुराग ॥ शिवजी की आप पर बड़ी कृपा थी । आपने प्रायः सब बड़े बड़े देवतों की स्तुतियां लिखीं और बहुत देवतों के मन्दिर भी बनवाए । स्मार्त आपको अपना आचार्य्य, और अद्वैतवादी अपना मानते हैं; निर्गुणमतावलम्बी अपना तथा शैव और शाक्त भी अपना अपना आचार्य्य आपको पुकारते हैं । "शिव विष्णु भक्ति"; "भजगोविन्दं"; "विश्वेशपादाम्बुज दीर्घ

नौका" इत्यादि उपदेश आपही के हैं; "ब्रह्मसूत्रभाष्य" तथा "नृसिंहतापनी भाष्य," आदि आपके प्रख्यात ही हैं। आप के मुख्य शिष्य चार प्रसिद्ध हैं—

१. पद्माचार्य्य जी;	३. स्वरूपाचार्य्य जी।
२. पृथ्वीधराचार्य्य जी;	४. तोटकाचार्य्य जी।

ऐसा कहते हैं कि आप इस मर्त्यलोक में केवल ३२ ही वर्ष रहे।

कलि संवत्सर	विक्रमीय सम्वत	ईसवी सन्
३८८९	८४५	७८८

Mr R. C. Datt (आर० सी० दत्त); A. C. Mukerji (ए० सं० मुकर्जी) M. A. B. L.; Dr. W. W Hunter (डाकटर् हन्टर); तथा श्रीतपस्वी राम जी सीतारामीय ने भी ऐसाही लिखा है॥

"श्रीशङ्कर दिग्विजय" नामक ग्रन्थ में आप का समस्त जीवन चरित्र है। यह भी कथा उसी की है।

अब श्री प्रिया दास जी महाराज की टीका (कवित्तों) पर ध्यान दीजिये—

(१६६/८४२) टीका। कवित्त।

विमुख समूह लैकैं किये सनमुख श्याम, अति अभिराम लीला जग विसतारी है। सेवरा प्रबल बास केवरा ज्यों फैलि रहे; गहे नहीं जाहिं, बादी शुचि बात धारी है॥ तजिकै शरीर काहू नृप में प्रवेश कियो, दियो करि ग्रन्थ, "मोह मुद्गर" सुभारी है। शिष्यनि सों कह्यो "कभूं देह में आवेश जानो तब ही बखानो आय सुनि कीजे न्यारी है"॥ १२४॥ (६२९-५०५)

"शुचि" = शृङ्गार रस। (अमरकोशे "शृङ्गारः शुचिरुज्वलः" ॥

वार्त्तिक तिलक।

श्रीशङ्कराचार्य्य जी ने भगवत विमुख (सेवड़ा, अबुध, अज्ञानी, बौद्ध, नास्तिक, अनीश्वरबादी, चार्वाक, जैन, इत्यादि समूहों को बाद में परास्त करके दंड देके, श्रीमन्नारायण श्याम सुन्दर जी के सन्मुख कर दिया, और श्रीबदरिकाश्रमादिक भगवद्धामों के माहात्म्य को प्रसिद्ध कर भगवतस्तोत्रादि "श्रीविष्णु सहस्त्र नाम भाष्य" गीता भाष्यादि अति सुन्दर भगवत यश लीला को जग में विस्तार किया। उस काल में सेवर्ड़ आदिक प्रबल नास्तिक समूह इस प्रकार से लोक में फैले थे कि जैसे बाटिका में फूले केवड़े की बास फैल जाती है; और बड़े ही विवादी थे, कि वेद वाक्य के ग्रहण में किसी प्रकार से आ नहीं सकते थे।

एक समय श्रीशङ्कराचार्य्य जी से शास्त्रार्थ में और २ विवादों से पराजय होके, आप को बाल ब्रह्मचारी जान के "शुचि" अर्थात् शृङ्गार रस (स्त्री पुरुष प्रसङ्ग) की वार्त्ता का बाद करने लगे। तब आप उस बात के जान्ने के अर्थ कुछ अवकास लेके किसी राजा ("अमरुक") के मृतक शरीर में, परकाय प्रवेश सिद्धि के बल से, घुस गए; और अपने शरीर की रक्षा करने को शिष्यों से कह गए। तथा, प्रवेश करने के पूर्व ही एक "मोह मुद्गर" नामक ग्रन्थ बना के शिष्यों

को पढ़ा के कहे गए कि "कदाचित विषयाशक्त होके नृप देह विषे मेरा ममत्त्व आवेश देखो तो आके यही ग्रंथ मुझे सुनाना, सुन्ते ही मैं नृप शरीर से न्यारा होके (तज के) निज देह में चला आऊंगा"

(१६१७) टीका। कवित्त।

जानिकै आवेश तन शिष्यनैं, प्रवेश कियो रावले में देखि सो श्लोक लै उचार्‌यो है। सुनत हि तज्यो तन, निज तन आय लियो, कियो यो प्रनाम दास, पन पूरो पार्‌यो है॥ सेवरा हराए बादी; आए नृप पास, ऊंचे छात पर बैठि एक माया फन्द डार्‌यो है। जल चढ़ि आयो, नाव भाव लै दिखायो, कहे "चढ़ौ, नहीं बूड़ी;" आप कौतुक सों धार्‌यो है॥ १२५॥ (६२९-५०४)

"रावल"=राजा का गृह।

वार्त्तिक तिलक।

श्रीशङ्कराचार्य्य जी जितने काल की अवधि शिष्यों से कह गए थे सो काल व्यतीत हो गया; तब शिष्य ने ज़ाना कि "जो स्वामी जी ने आज्ञा की थी सो काल तो बीत गया, अतएव अब जाना जाता है कि राजा के तन में ममत्व का आवेश आप को कुछ हो गया है;" तब राजा के गृह में जाके शिष्य ने "मोह मुद्गर" के श्लोक उच्चारण करके नृप शरीरस्थ स्वामी जी को सुनाया। सुनते ही आपने नृपतन त्याग के अपने शरीर को ग्रहण कर लिया। शिष्य साष्टांग प्रणाम कर कहने लगे कि "हे स्वामी! जो पन किया था सो

आपने पूरा किया;" आप बोले "तुमने भी मेरी आज्ञा भले पाली।"

श्रीशङ्कराचार्य्य जी ने उस काम कौतुक बाद को, इस ढंग से समझ के, कुवादी सेवड़ों को बाद में परास्त किया।

जब सेवरों ने जाना कि "अब तो हम सब हार गए, राजा शङ्कराचार्य्य जी ही का मत ग्रहण करेगा, अतः राजाको शङ्कराचार्य्य सहित माया से मारडालें" तब, कुमत करके, निज शिष्यों सहित मायावी सेवड़ों का गुरू राजा तथा श्रीशङ्कराचार्य्य जी को लेके ऊंचे छत पर जा बैठा और अपने माया फन्द का प्रयोग किया कि जिस्से चारों ओर से प्रलय कालीन समुद्र सरीखा जल छत के समीप तक चढ़ आया। और उसी जल में छत के समीपही माया की एक बहुत बड़ी नौका भी आ पहुंची; तब सेवड़ों के उस गुरू ने राजा से कहा "कि शीघ्र इस नाव पर चढ़ो, नहीं तो डूब जाओगे।" राजा ने भय से चढ़ना चाहा; परन्तु श्रीशङ्कराचार्य्य जी ने इस माया कौतुक को अपने मन में मिथ्या ही धारण किया (झूठ समझा)

(१६६) टीका। कवित्त।

अचारज कही यो चढ़ाओ इनि सेवरानि; राजा ने चढ़ाए; गिरे टूक उड़ि गए हैं। तब तो प्रसन्न नृप, पाव पर्‍यो, भाव भर्‍यो, कह्यो जोई कर्‍यो धर्म भागवत

लए हैं ॥ भक्ति ही प्रचार; पाछे मायावाद डारी दीनो, कीनो प्रभु कह्यो, किते बिमुख हु भए हैं । ऐसे सो गँभीर सन्त धीर वह रीति जानें, प्रीति ही में साने हरि रूप गुन नए हैं ॥ १२६ ॥ (६२९–५०३)

वार्त्तिक तिलक ।

उस माया जाल के जल में वह माया रूपी मिथ्या नौका देखके राजा चढ़ताही था तभी श्रीशंकराचार्य्य जी ने राजा को चढ़ने से रोक के कहा कि "पहिले इन सब सेवड़ों को चढ़ाओ" । राजा ने सेवराओं से कहा कि "हां आगे आप सब ही चढ़िये" यह सुन सेवड़ों ने बिचारा कि "जो अब हम इस नौका में नहीं चढ़ते तौभी तो राजा हम सब को मार ही डालेगा"; इससे वे सब सेवड़े राजा के भय से चढ़े । वह नाव तो देखने मात्र की थी ही, भूमि में गिरके सब सेवरे टुकड़े टुकड़े होके मर गए । फिर तो न वह नाव ही रही, न वह जल ही रह गया ।

तब तो यह सब कौतुक देख राजा अत्यन्त प्रसन्न हो, धन्यवाद पूर्व्वक श्री शंकरस्वामी के चरणों पर गिरा; तथा भक्तिभाव में भर गया । और, आप ने जो उपदेश दिया राजा ने सो ही किया, अर्थात् उसने वेदविहित भागवत धर्म को अपनी प्रजा समेत ग्रहण किया ।

इस इस प्रकार से श्रीशंकराचार्य्य जी ने प्रथम तो श्री भगवद्भक्ति तथा भागवत धर्म ही का भलीभांति

प्रचार किया था; परन्तु पीछे कालानुवर्ती कौतुकी प्रभु की प्रेरणा से, अपने मत में स्वयं उन्होंने कुछ मायावाद डाल दिया; कि केवल निर्विशेष अद्वितीय ब्रह्म ही सत्य है और सब माया है, अर्थात् ईश्वर को भी विद्यामाया युक्त कहा और ज्ञान, भक्ति, वेद, मन्त्र, इत्यादिक मोक्ष साधनों को भी केवल विद्यामायामय बताया, तथा जीव और संसार को अविद्यामायामय, और दोनों मायाओं को तीनों काल में मिथ्या कहा। अतः कितने जीव भगवत से और भागवतधर्म से विमुख हो गए और होते जाते भी हैं। (यथा, दोहा) ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर कहैं न दूसरि बात। कौड़ी लागी लोभ वश करहिं विप्र गुरु घात॥"

और जो धीर गम्भीर (श्री श्रीधर स्वामी आदि सरीखे) सन्त हैं सो तो श्रीशंकराचार्य्य जी की प्रथम भक्ति मति रीति को यथार्थ जान के अपने मन को प्रीति ही में सान के नित्य नवीन भगवत रूप गुण लीला में लौलीन हुए हैं तथा होते हैं॥

इन कथाओं को किसी किसी ने प्रकारान्तर से भी लिखा है, परन्तु यहां तो श्री प्रिया दास जी के अक्षरों के अनुसार ही लिखा गया॥

श्रीशंकराचार्य्य जी कृत "मोह मुद्गर" के १६ (सोलह) श्लोकों में से, ये पांच श्लोक—

"का तव कान्ता कस्ते पुत्रः, संसारोय मतीव विचित्रः।
कस्य त्वं वा कुत आयातः, तत्त्वं चिन्तय तदिदं भ्रातः॥३॥
तत्त्वं चिन्तय सततं चित्ते, परिहर चिन्तं नश्वरवित्ते ।
क्षणमिह सज्जनसङ्गतिरेका, भवति भवार्णवतरणे नौका॥६॥
सुरमन्दिरतरु मूल निवासः, शय्या भूतलमजिनं वासः।
सर्ब परिग्रह भोग त्यागः, कस्य सुखं न करोति बिरागः ॥१०॥
बालस्तावत् क्रीडासक्तः, तरुणस्तावत् तरुणी रक्तः ।
वृद्धस्तावत् चिन्तामग्नः, परमेब्रह्मणि कोपि न लग्नः ॥११॥
यावज्जननं तावन्मरणं, तावज्जननी जठरे शयनम् । इति संसारे स्फुटतर दोषः, कथमिह मानव तव सन्तोषः? ॥१३॥"

(१६१/८४२) छप्पै ।

"नामदेव" प्रतिज्ञा निर्बही, ज्यों त्रेता* नरहरिदास की ॥ बालदसा "बीठल" पानि जाके, पै पीयौ ॥ मृतक गऊ जिवाय परचौ असुरन कौं दीयौ ॥ सेज सलिल तें काढ़ि पहिल जैसी ही होती।

देवल उलट्यो देखि सकुचि रहे सबही सोती ॥ "पंडुरनाथ" कृत अनुग ज्यों छानि सुकर छाई घास की। नामदेव प्रतिज्ञा निर्बही, ज्यों त्रेता नरहरि दास की ॥ ३८ ॥ (४३/२१३)

"सोती," = श्रोत्री, वेद पाठी ब्राह्मण ।
"पानी" = पाणि, कर, हाथ ।
"होती" = थी।

वार्तिक तिलक ।

श्री नामदेव जी ।

श्रीभगवद्भक्त नामदेवजी की प्रतिज्ञा श्रीहरिकृपा से इस प्रकार से निबही कि जैसे त्रेता * में श्री नृसिंह जी के दास श्री प्रह्लाद जी की (प्रतिज्ञा निबहीथी)।

* श्री नृसिंहावतार सत्ययुग का कहा जाता है, और श्रीनाभास्वामी जी ने त्रेता लिखा, इसका तात्पर्य यह है कि उक्त अवतार कृतयुग त्रेता के सध्या में हुआ अतएव त्रेता ही कहा; हिरण्यकशिपु ने बर ही ती मांग लिया था कि 'न सत्ययुग में मरे न त्रेता में' ॥

देखिये, बालअवस्था ही की प्रीतिदशा में जिनके हाथों से श्रीविट्ठलभगवान् ने दूध पिया। और मरी हुई गाय को जिला के असुरों (यमन म्लेच्छों) को परीक्षा परचौ दिया। तथा, उस यमनराज की दी हुई सेज (पलंग) को जो आपने नदीके जल में डाल दिया था, सो उस जल में से वैसेही अनेक पलंग निकाल के दिखा दिये।

श्रौर जब श्रापने मन की दुचिताई के भय से पनही कमर में वांध ली थी, उस्को देखके पुजारी पंडों ने श्राप का तिरस्कार किया, इस्से श्राप मन्दिर के पीछे जाके भजन गान करने लगे; तब "श्रीपण्डरीनाथ" जी के देवालय का द्वार उलट के श्राप ही की श्रोर हो गया जिस्को देखके श्रत्यन्त सकुचाके सब पूजक श्रोत्री लोगोंने श्रीनामदेव जी से विनयकर श्रपना श्रपराध क्षमा कराया ।

पुनः भक्तवत्सल श्रीपंडुरनाथ जी को श्रापने श्रपनी प्रेमपुंजभक्ति के बल से, श्रनुग (सेवक) सरीखा कर लिया, यहां तक कि प्रभु ने स्वयं श्रपने कर कमलों से श्राप का छप्पर छाया ॥

(दो०) "जिन जिन भक्तन प्रीति की, ताके बस भए श्रानि । सेन होइ नृप टहल किय, नामदेव छाई छानि ॥" (श्रीध्रुवदास जी)

श्रीशिव सम्प्रदाय (विष्णुस्वामी संप्रदाय) में श्रीलक्ष्मणभट्टजी से श्रौर श्रीवल्लभाचार्य्य जी से श्राप पहिले हुए; श्रापके गुरु श्रीज्ञानदेव जी; शिष्य त्रिलोचन देव; श्रौर श्रापके नाना श्री वामदेव जी थे। श्राप सुकवि थे; श्रापकी कविता उदासियों के "ग्रन्थ साहिब" में भी संग्रहीत है। यह बात तो प्रसिद्ध ही है कि श्राप श्रीकबीर जी के समकालीन थे।

कलिसंवत्सर	विक्रमीय सम्बत्	ईसवी सन्
४५८९	१५४५	१४८८

श्रीराधाकृष्ण जी (काशीनागरीप्रचारिणी सभा), तथा श्रीतपस्वीराम सीतारामीय जी ने भी ऐसाही लिखा है; और उस समय भारतवर्ष में "बादशाह सिकन्दर लोदी" था॥

(५४०/८४२) टीका। कवित्त।

छीपा वामदेव हरिदेव जू की भक्त बड़ो, ताकी एक बेटी पतिहीन भई जानिये। द्वादश बरष मांझ भयो तन, कही पिता सेवा सावधान मन नीके करि आनिये॥ तेरे जे मनोरथ हैं पूरन करन एई जो पै दत्तचित्त ह्वैकै मेरी बात मानिये। करत टहल प्रभु बेगिही प्रसन्नभए, कीनी काम बासना सु पोखि जन मानिये॥ १२७॥ (६२९—५०२)

"छीपा" = छीट वस्त्र छापनेवाले (छीपा दरजी नहीं)

वार्तिक तिलक।

पण्डरपुर (दक्षिण) में, जाति के छीपा, श्रीबामदेवजी श्री हरि जी के परम भक्त हुए; तिनकी एक कन्या थोड़ीही अवस्था में विधवा हो गई। जब उस्की अवस्था बारह बर्ष की हुई, तब उसके पिता श्रीबामदेव जी (श्रीनामदेव जी के नाना) ने कहा कि "श्रीपण्डुरनाथ (श्रीबिट्ठलदेव) जी, कि जो मेरे गृह में विराज-

मान हैं, इनकी सेवा पूजा सावधान मन लगा के भली भांति से किया कर, तेरे जितने मनोरथ हैं उन सब के पूरेकरनेहारे येही प्रभु हैं; परन्तु जो मेरी बात में विश्वास करके चित्त लगाके प्रेम सहित सेवा करेगी तो"।

इस प्रकार पिताका उपदेश सुन, वह बड़ भागिन सप्रेम सेवाटहल दिन रात करने लगी । उस पर शीघ्र ही प्रसन्न हो प्रियतम प्रभु ने अति अनूप किशोर रूप से साक्षात् दर्शन दिया, जिन्हे देख उसको काम बासना हुई । सर्वकामपूरक प्रभु ने उसकी कामना पूर्ण की, यहां तक कि वह गर्भवती हो गई । इस कलिकाल में भी ऐसी अनोखी प्रगट कृपा प्रभु की हुई, इसको विश्वास पूर्वक मानिये ॥

(दो०) "कलियुग सम नहिं आन युग, जो नर करि विश्वास । गाइ गाइ हरि भक्त यश, भव तरु बिनहि प्रयास ॥"

(१७१/८४३) टीका । कवित ।

बिधवा कौ गर्भ; ताकी बात चली ठौर ठौर, दुष्ट शिरमौरनि की भई मन भाइये । चलत चलत वामदेव जू के कान परी, करी निरधार प्रभु आप अपनाइये ॥ भए जू प्रगट बाल, नाम "नामदेव" धर्यो, कर्यो मन भायो सब सम्पति लुटाइये । दिन दिन बढ़्यो, कछु और रंग चढ़्यो; भक्तिभाव अंग मढ़्यो, कढ़्यो, रूप सुखदाइये ॥ १२८ ॥ (६२९-५०१)

"कढ़यो" = निकला। "करीनिर्धार" = निश्चय निर्णय किया; पूछा। "मढ़यो" = मढ़ा। छाया, लपेटा।

वार्त्तिक तिलक।

कुछ कालान्तर में जब लक्षणों से उनका गर्भ प्रत्यक्ष जान पड़ने लगा, तब बिधवा के गर्भ की वार्त्ता जहां तहां लोग मुहांमुहीं करने लगे, और दुष्टशिरोमणि निन्दकों की मन भाई बात हुई; क्योंकि वे निन्दा करने के लिये छिद्र ढूंढ़ते ही रहते हैं, सो मिल गया। वार्ता चलते चलते श्रीभक्त बामदेव जी के कानों तक पहुँची; तब आपने एकान्त में पुत्री से पूछा कि "यह क्या बात है?" इन ने, बांछा-पूरक-कृपा-युक्त प्रभु के दर्शन देने तथा का अपने को अपना लेने की सत्य सत्य बात, पूरी पूरी कह सुनाई; आप (श्रीवामदेवजी) सुनके अति हर्षित हुए। धन्य आप के भाग्य।

प्रसव काल की पूर्णता पर अनूपम बालक प्रगट हुए; श्रीबामदेव जी ने बालक का नाम "नामदेव" रक्खा और मनमाना जन्मोसव कर, घर की सम्पति को लुटाया; जय जय।

बालक दिन दिन प्रति बढ़ने लगा; इन में लोक के रंगों से कुछ और ही रंग; (श्रीरामानुराग रंग) चढ़ा; और प्रेम भक्तिभाव से लपेटा हुआ अति सुखदाई सुन्दर रूप का प्रकाश निकलने लगा, क्या कहना॥

(१७२/८४२) टीका। कवित्त।

खेलत खेलौना प्रीति रीति सब सेवाही की, पट

पहिरावै, पुनि भोग को लगावहीं । घंटा लै बजावैं, नीके ध्यान मन लावैं, त्यों त्यों अति सुख पावैं, नैन नीर भरि आवहीं ॥ बार बार कहैं नामदेव बामदेव जू सों "देवी मोहि सेवा मांझ, अतिही सुहावहीं" । "जाऊं एक गाउँ, फिरि आऊं दिन तीनि मध्य, दूध को पिवावौ, मत पीवौ, मोहि भावहीं ॥१२९॥(६२९–५००)

"सेवा" = अर्चावतार भगवत की परिचर्य्या; ठाकुर जी ।

जब श्रीवामदेव जी की पांच वर्ष के निकट बाल्यावस्था हुई: तब आप खेल खेलने लगे; सो और संसारी खेल नहीं; किन्तु जैसे अपने नाना जी को पूजा करते देखते थे, वैसे ही, प्रीति रीति से सब सेवा पूजाही का खेल खेलते थे । कोई पाषाणादिक की मूर्त्ति कल्पित करके उनको स्नान कराके बस्त्र पहिराते, पुष्प चढ़ाते, भोगलगाते, घंटा बजाके धूप आर्ती करते और भली भांति आंखें मूंद के ध्यान में मन लगाते थे; बरंच ध्यान करते समय आपको श्रीप्रभुकृपा संस्कार बश अपूर्व सुख उत्पन्न होता और नेत्रों में प्रेमानन्द का जल भर आता था । यथा (चौ०) "खेलौं तहां बालकन मीला । करौं सकल रघुनायक लीला ॥"

कुछ कालान्तर में श्रीनामदेव जी श्रीबामदेव जी से बारम्बार कहने लगे कि "नाना जी ! मुझे अपनी सेवा अर्थात् अपने ठाकुर जी, पूजा करने के लिये,

दीजिये; मुझको उसमें बड़ाही सुख प्राप्त होगा क्योंकि मुझको सेवा अत्यन्त प्रिय लगती है"।

इस प्रकार सचाई सहित अति अभिलाषा देख, श्री बामदेव जी एक दिन बोले कि "मुझे तीन दिनों के लिये एक ग्राम को जाना है; सो जब जाऊंगा तब तुम पूजा करना, और दूध ठाकुर जी को पिलाना, परन्तु प्रभु को भोग लगाए बिना तुम आप न पीना"। श्रीनामदेव जी ने सुन के कहा कि "हां बहुत अच्छा, यह तो मुझे बहुत ही भला लगता है"॥

(१७३ / ८४२) टीका। कवित्त।

कौन वह बेर? जेहिं बेर दिन फेर होय, फेर फेर कहैं "वह बेर नहिं आइयें?" आई वह बेर, लै कराही मांझ हेरि दूध डार्‌यो युग सेर मन नीके कै बनाइयें॥ चौपनि के ढेर. लागि निपट अबेर, दृग आयो नीर घेरि, जिनि गिरै घूटि जाइयें। माता कहै टेरि, "करी बड़ी तैं अबेर, अब करी मति भेर" "अजू चितदै औंटाइयें॥ १३०॥ (६२६—४९९)

"बेर=बेला, समय	"निपट"=अत्यन्त
"हेरि"=देख भाल के	"अबेर"=बिलम्ब
"चौप"=प्रेम का चाव	"अवसेर"=चिन्ता
"ढेर"=राशि, समूह	"भेर"=भेल, विलम्ब

"घूंट जाइये"=रोक लूं, रोकलेना चाहिये॥

वार्तिक तिलक।

जब श्रीबामदेव जी आप को सेवा देके उस ग्राम

को चले गए, तब श्रीनामदेव जी को रात्रि ही से छटपटी लगी और आप मन में यह बिचारने लगे कि "वह बेला कौन है? कि जिस बेला में फिर दिन आवे; और बारंबार माता से पूछने लगे कि "मां! अभी सेवा का समय नहीं आया?"

होते होते वह प्रभात बेला आगई; आप उठ के स्नानादिक और पूजा करके, दो सेर दूध देख भाल छान के कड़ाही में छोड़ औंटने लगे। मन में ऐसी अभिलाषा कर रहे हैं कि "भले प्रकार से दूध को बनाऊं"। चित्त में प्रभु प्रेम चाह चौप की अति अधिकहता है, और अत्यन्त औसेर अर्थात् चिन्ता भी है कि "मुझ से दूध कैसे उत्तम बने जिस्में प्रभु पीलेवें"। ऐसी चिन्ता करते में नेत्रों में प्रेमजल भर आया; तब आपने उसको रोका कि कहीं कोई बूंद दूध में न टपक पड़े।

माता पुकार के कहने लगीं कि "बेटा! तूने बड़ा बिलम्ब लगाया, अब अधिक झेल न कर, शीघ्र भोग लगा"। सुनके आप बोले कि "माता! मैंने चित्त लगा के दूध औंटा है इससे कुछ बिलम्ब हो गया"॥

(१७४/८४२) टीका। कवित्त।

चल्यो प्रभु पास, लै कटोरा छविरास, तामैं दूध सो सुबास-मध्य, मिसिरी मिलाइयै। हिये मैं हुलास, निज अज्ञता को त्रास, ऐपैं करैं जौ पै दास मोहि, महा सुख दाइयै॥ देख्यो मृदु हांस, कोटि-चांदनी की

भाव, कियौ भाव को प्रकास, मति अति सरसाइये।
प्याइबे की आस, करि ओट कछु, भखो स्वास; देखिके
निरास, कह्यो "पीवौ जू अघाइये" ॥१३१॥ (६२९-४९८)

"भस्वो स्वास"=स प्रेम चित एकाग्र किया॥

वार्त्तिक तिलक।

जब दूध सिद्ध हो गया, तब एक बड़े सुन्दर कटोरे में सुगन्ध द्रव्य तथा मिस्री मिलाया हुआ वह दूध लेके श्रीनामदेवजी, भगवान् श्रीविट्ठलदेवजीकेपास चले। हृदय में अतीव प्रेमानन्द का हुलास और साथ ही साथ अपनी अज्ञता का त्रास भी, अर्थात् यह कि "मुझ से दूध बनाते बना कि नहीं? प्रभुके योग्य हुआ पियेंगे? कि नहीं? अहा! यदि मुझे अपना दास बनालें और कृपा करके दूध पीलें। तो मैं सदा सेवा करके सुख पाऊं।"

योंही बिचार करते, समीप जाके, आपने श्रीप्रभु का श्रीमुख अवलोकन किया। तो देखा कि श्रीविग्रह जी में कोटिन चांदनी के भास के समान मृदु मुस्क्यान प्रगट हो रही है; क्योंकि श्रीनामदेव जी के प्रेमभाव का प्रकाश प्रभु ने अपने विग्रह में प्रगट दिखाया; तब तो नव अनुरागी श्रीनामदेव जी की मति अति ही सरस हो आई। और, दूध पान कराने की आसा से कटोरा आगे रख, किसी वस्त्र का ओट कर, प्रेम सहित स्वांस भर, चित्त एकाग्र कर, अर्पण किया; दूध पीने की प्रार्थना की।"

पुनः आवर्ण वस्त्र को कुछ अलग करके देखा कि सब दूध अभी तक ज्यों का त्यों ही रक्खा है; तब, कुछ निरास से होके प्रार्थना करने लगे कि "प्रभो! आप अति अघाके दूध पीजिये जिस्में मैं भी प्रेमानन्द से अघा जाऊं॥

(१७५ / ८३२) टीका। कवित्त।

ऐसें दिन बीते दोय, राखी हिये बात गोय, रह्यो निशि सोय, ऐपै नींद नहीं आवहीं। भयो जू सवार, फिरि वैसैंही सुधार लियो हियो कियो गाढ़ो, जाय धस्यो पियो भावहीं॥ बार बार "पीवो" कहूं; अब तुम पीवो नाहिँ, आवै भोर नाना; गरे छूरी दै दि-खावहीं। गहि लीयो कर, "जिनिकर ऐसी पीवौं मैं" तो पीवेकौं लगेई, "नेकु राखो, सदा पावहीं" ॥१३२॥ (६२१—४९७)

"सवार" = सवेरा, प्रभात, भोर।

"गाढ़ो हियो" = दृढ़ मन।

वार्त्तिक तिलक।

श्रीनामदेव जी ने बहुत प्रार्थना की परन्तु प्रभु ने दूध नहीं पिया; तब आप भी उपवासही करके रह गए; दूसरे दिन फिर वैसेही दूध औंट, आगे रख विनय किया तब भी प्रभु ने नहींही पिया। दोनों दिन दूध न पीने की बात माता से न कही; भूखेही चुपचाप रात्रि में पड़ रहे; परन्तु नींद किंचित भी नहीं

आई; केवल प्रभु के दूध न पीने की चिन्ता ही में सारी रात व्यतीत हुई ॥

तीसरे दिन का प्रातःकाल हुआ; फिर उसी प्रकार से पूजा आदि करके दूध को औंट, सुधार, प्रभुके आगे ला रक्खा; और जो, प्रभु के दूध न पीने के सोच से मन सिथिल हो रहा था, सो दृढ़ करके दीनता युक्त कहने लगे कि "हे प्रभो! दूध पीलीजिये; जिस्में मैं शोक से मुक्त हो आनन्द पाऊं"। इतने पर भी सर्कारने जब दूध नहीं ही पिया, तब तो श्रीनामदेव जी अति अधीर हो गए, क्योंकि बाल्यावस्था के मुग्ध मधुर प्रेम विश्वास बस आप ऐसाही समझते थे कि "प्रभु नाना के हाथों से नित्य ही दूध पिया करते हैं" ॥

अतः परम प्रेम की विलक्षण विह्वलता से, आप कहने लगे कि "मैं बारम्बार सविनय कहता हूं कि दूध पीजिये पीजिये, पर आप अब नहींही पीते; और कल्ह सवेरे नाना आवेंगे मुझ से आप के दूध न पीने का समाचार सुन, मुझे आपकी सेवा पूजा से अलग कर ही देंगे; इस्से भला है कि मैं मरही जाऊं" इतना कह तीक्ष्ण छूरी ले, प्रभु को दिखा के, अपने गले पर लगाही तो दी।

तब तो, वहीं, भक्तवत्सल कृपासिन्धु विश्वासवर्द्धक प्रभु ने अतीव आतुरता से नामदेव जी का छूरी-युक्त-

हाथ पकड़ लिया और कहा कि "अरे प्रिय बालम ! ऐसा मत कर; देख मैं दूध पिये लेता हूं"। ऐसा समझा के प्रभु कटोरा हाथ में ले, दूध पीने लगे। जब थोड़ा सा दूध रह गया, तब श्रीनामदेव जी बोले कि "महाराज ! मेरे लिये भी तो कुछ रहने दीजिये; क्योंकि आपका प्रसाद नाना का दिया मैं सदाही पाता था" ॥

तब कृपा से बिहँस के अपने अधरामृत का अवशेष प्रभु ने अपने हाथों से ही नामदेव जी को पिला के भक्ति प्रेमानन्द से तृप्त कर दिया।

(श्लोक) ध्यानेपाठे जपे होमे, ज्ञाने योगे समाधिभिः। विनोपासनया मुक्ति नास्ति सत्यब्रवीमिते ॥ १ ॥

(१/८ ७/४ ६/२) टीका । कवित्त ।

आये बामदेव, पाछें पूछैं नामदेवजू सों, दूध को प्रसंग, अति रङ्ग भरि भाखियैं। "मोसौं न पिछानि, दीन दोय हानि भई; तब मानि डर, प्रान तज्यो चाहौं, अभिलाषियैं ॥ पीयौ, सुख दीयो, जब नेकु, राखि लीयो, मैं तो जीयो," सुनि बातें, कही "प्यायो कौन साखियैं?" धस्यौ, पै नपीयैं, अस्यो, प्यायौ, सुख पायौ नाना, यामैं लै दिखायौ भक्त-बस-रस चाखियैं ॥१३३॥ (६२९—४९६)

"पिछानि"=पहिचान। "अस्यो"=अड़े, हठ किया।

वार्तिक तिलक।

जब श्रीबामदेव जी घर आए। और श्रीनामदेव

जी से पूछने लगे कि "पूजा सेवा नीके करके दूध भोग लगाया करते थे?"॥ तब श्रीनामदेव जी अति प्रेमानन्द रङ्ग में रँगे हुए दूध पिलाने का सारा प्रसंग कहने लगे; कि "नाना! मुझ से ठाकुरजी से जान-पहिचान तो थी ही नहीं, इस्से दो दिन तो बड़ी हानि हुई कि प्रभु ने दूध नहीं ही पिया; तब आपके भय से मैंने छूरी लेके अपना गला काटना चाहा; सो देखते ही प्रभु ने अति अभिलाख से दूध पान कर मुझे बड़ा सुख दिया; थोड़ा सा मैंने प्रसाद भी मांग लिया; इस भांति प्रभु ने दूध पी पिला के मुझे जिलाया"।

यह वार्त्ता सुनके श्रीवामदेव जी बोले कि "दूध पिलाने का साखी कौन है?"

श्रीनामदेव जी ने कहा कि स्वयं ठाकुरजी ही साक्षी हैं कि जिन्होंने पिया है"। नाना ने कहा कि "भला पिलाके मुझे भी तो दिखा दे"। तबश्रीनामदेव जी ने उसी प्रकार से दूध बनाके सामने रख पीने की प्रार्थना की, परन्तु प्रभु ने न पिया। तब आपने अत्यन्त हठ पूर्वक कहा कि "कलह तो तुमने पिया और आज नपीके मुझे झूठा बनाते हो? वह छूरी अभी मेरे पास रक्खी ही है" यह सुन मन्द मुस्क्यान सहित प्रभु ने फिर दूध पी लिया।

यह देख श्रीवामदेव जी ने अत्यन्त सुख पाया।

और प्रभु से कहा कि "नाथ! इसको अपनी सेवा ही के लिये आपने प्रगट किया है; सो अब इसी से सेवा लिया कीजिये।" उसी क्षण से श्रीनामदेव जी को सब सेवा पूजा सौंप दी॥

देखिये! इस चरित्र में प्रभु ने यह दिखाया कि "हम भक्तों के प्रेम बसही होके भोजनादिक रसों को चखते हैं, तात्पर्य्य प्रेमही को चखते हैं॥"

(१७१/८४२) टीका। कवित्त।

नृप सो मलेछ, बोलि, कही "मिले साहिब को, दीजिये मिलाय करामात दिखराइये"। "होय करामात तो पै काहे को कसब करैं? भरैं दिन ऐपै बांटि सन्तन सों खाइये॥ ताही के प्रताप आप इहांलौं बुलायो हमैं;" "दीजिये जिवाय गाय घर चलि जाइये।" दई लै जिवाय गाय सहज सुभाय ही मैं, अति सुख पाय, पांय पर्यो, मन भाइये॥ १३४॥ (६२९—४९५)

"साहिब् صاحب"=स्वामी प्रभु। "करामात كرامات"=प्रभुता, सिद्धाई, परची, प्रभाव, परीक्षा। "कसब् كسب"=प्राप्त करना, कमाना॥

वार्तिक तिलक॥

श्रीभगवत कृपा से जब श्रीनामदेव जी की प्रीति-प्रतीति-भक्ति-महिमा अति फैली, और सब राजाओं-का-राजा-म्लेक्ष (मुसलमान् बादशाह्) के यहां तक भी आप की सिद्धाई की वार्ता जा पहुंची; तब उसने आपको बुला-के कहा कि "हम सुनते हैं कि आप साहिब् को मिले

(पहुंचे) हैं; सो हमको भी मिला दीजिये अथवा अपनी कुछ करामात् दिखाइये"। आपने उत्तर दिया कि "यदि मुझ में कोई करामात् ही होती तो मैं अपनी जीविका के हेतु छीपा का काम क्यों करता? दिन भरके परिश्रम से जो कुछ मिलता है सो, सन्तों के साथ बांट खाता हूं; इसी के प्रताप से अर्थात् जो साधु लोग मुझ पर कृपा करके मुझे दरशन देते हैं, इसी से लोगों में मेरी बड़ाई हो रही है, यहां तक कि आप ने भी अपने हां मुझे बुला भेजा है"।

यह सुन भूप (बादशाह) ने कहा कि "इस मरी हुई गऊ को जिला दीजिये; बस अपने घर चले जाइये"।

नृप का हठ देख के, आपने सहज स्वभाव ही से, अर्थात् एक * विष्णुपद सप्रेम गान करके, गऊ को जिला दिया।

*विनती सुनु जगदीश हमारी। तेरो दास, आस मोहि तेरी, इत करु कान मुरारी॥ दीनानाथ! दीन ह्वै टेरत गायहिँ क्यों न जियाओ? आके सबै अंग है याके मेरे यश हिँ बढ़ाओ॥ जो कहों याके करमहिँ में नहिँ जीवन लिख्यो बिधाता। तौ अब नामदेव आयुष तें होहु तुमहिँ प्रभु! दाता॥ १॥

(श्लोक) हरिस्मृति प्रमोदेन; रोमाञ्चित तनुर्यदा।
नयनानन्दसलिलं, मुक्तिदासी भवेत्तदा॥ १॥

यह प्रभाव (करामात्) देख, भूपति (बादशाह) बड़ा-हीप्रसन्न हुआ और सुख पूर्वक सादर आपके चरणों पर गिरा॥

(१७८/८४२) टीका । कवित्त ।

"लेवो देश गांव, जाते मेरो कछु नांव होय," "चाहिये न कछु," दई सेज मनि मई है । धरि लई सीस, "देउँ संग दशबीस नर," नाहीं करि आये, जल-माँझ डारि दई है ॥ भूप सुनि चौंकि पस्यो, "ल्यावो फेरि;" आए "कहौ;" कही "नेकु आनिके दिखावो कीजै नई है"। जल तैं निकासि बहु भांति गहि डारा तट "लीजिये पिछानि" देखि सुधि बुधि गई है ॥१३५॥ (६२९-४९४)

"जातें" = जिस्से

वार्त्तिक तिलक ।

और कर जोड़ के कहा कि "आप मुझ पर कृपा करके कोई गांव वा देशराज्य लीजिये जिस्से आप सरीखे सन्तों की सेवा से मेरा नाम सुयश हो" आप ने उत्तर दिया कि "मुझ को कुछ नहीं चाहिये"।

(श्लोक) ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते परम् ॥ १ ॥

दिल्लीपति ने बड़ी प्रार्थना करके एक सुवर्ण रचित मणिजटित सेज (पलंग) दिया कि "इसपर अपने साहिब् को सयन कराइयेगा"। तब श्रीनामदेव जी ने अपनी साधुता सरलता से उसको अपने ही माथे पर रख लिया ।

सीस पर रखते देख, यवनाधिप ने प्रार्थना की कि

"मैं दस बीस मनुष्य साथ दिये देता हूं पहुंचा देंगे, आप पर्य्यंक को अपने मस्तक पर न रखिये" आपने नकार दिया कि "मुझे मनुष्यों की कुछ भी आवश्यकता नहीं हैं।" और आप अपने स्थान को चल दिये। नृप ने पीछे से कुछ लोग रक्षा के निमित्त भेज ही तो दिये। आप नदी (यमुना) तट आए जहां अति अगाध जल था; वहां उस सेज को श्रीप्रभु की अर्पण करके जल में डाल दिया। (चौ०। सब से सो दुर्लभ मुनिराया। रामभक्तिरत, गत मद माया॥)

इस कौतुक को देख के उन राजभृत्यों ने (जो पीछे २ आरहे थे) शीघ्र लौट के म्लेक्षराज से समाचार कहा; जिसे सुन्ते ही भूप चौंक पड़ा; और आज्ञा दी कि "नामदेव जी को फिरालाओ"।

ऊपर (पृष्ट ३७२ की १८ वीं पंक्ति में), "शिष्य त्रिलोचन देव" लिखा गया है; सो भूल और प्रमाद है। ऐसा चाहिये कि "आपके (श्रीनामदेव जी के) 'गुरुभाई' श्री त्रिलोचनदेव जी"॥

(२) ऐसा लिखा है कि जब श्रीनामदेव जी की माता ने अपने पिता श्रीवामदेवजी से अपने गर्भ की वार्त्ता पूरी पूरी कहसुनाई, तब उसी दिन स्वप्न में श्रीप्रभु ने भी वामदेव जी से आज्ञा की कि "हां, इस निष्कलङ्क की सब बातें ठीक हैं, सत्य हैं, तुम कुछ शंका संशय मत करो सुता तुम्हारि सकल गुन खानी"॥

सो सुन, आप लौट आए और पूछा कि "किसलिये फिर बुलाया ? सो कहो" उसने कहा कि "उस सेज की तनक लाके (सुनारोंको) दिखा दीजिये, क्योंकि वैसाही नया पर्य्यंक बनवाना है" ॥

आप ने आके उस जल से वैसे और उससे भी चढ़ बढ़ के अनेक सेज निकाल निकाल तट पर डाल दिये और कहा "लो पहिचान के अपनी ले लो' यह प्रभाव देख नरेशकी सुधबुध जातीरही चकित होगया ॥

(१७९/८५२) टीका । कवित्त ।

आनि पर्‌यो पाय, "प्रभु पास तें बचाय लीजे;"
"कीजे एक बात कभूं साधु न दुखाइये"। लई*यही
मानि, "फेरि कीजियै न सुधि मेरी"; "लीजियै गुननि
गाय मन्दिर लों जाइयै" ॥ देखि द्वार भीर, पगदासी
कटि बांधी धीर; कर सो उछीर करि, चाहैं पद गाइये ।
देखि लीनी वेई, काहू दीनी पांच सात चोट ! कीनी
धकाधकी ! रिस मन मैं न आइयै ॥ १३६ ॥ (६२९-४९३)

"उछीर" = भीड़ नहीं, "घना नहीं, अलग अलग । "कर सों उछीर करि"=हाथों से लोगों कोकुछ इधर उधर सरका थोड़ा अवकाश करके । "रिस" = रोष, क्रोध ।

* पाठान्तर "लीजै"

वार्तिक तिलक ।

यह दूसरा बड़ाभारी चमत्कार देखके, भूप फिर चरणों पर पड़, हाथ जोड़, प्रार्थना करने लगा कि "आप ने गऊ भी जिला दी तब भी आप का प्रभाव

नजानके मैंने पलंग को देखना चाहा, सो यह मेरा अपराध आप क्षमा करके अपने प्रभु से मुझे बचा-लीजिये जिस्में वे भी मेरा अपराध क्षमा करदें" श्री-नामदेव जी ने आज्ञा की कि "जो मेरे प्रभु की क्षमा चाहो तो एक बात करना कि कदापि साधु मात्र को दुख मत देना" (दोहा) साधु सताए तीन हानि अर्थ[१] धर्म[२] अरु बंस[३]। "टीला" नीके देखिये कौरव, रावण, कंस ॥ १ ॥ यह बात उसने मानली। पुनः चलते समय आप ने यह भी कहा कि "अब फिर मुझको अपने हां न बुलाना;" और वहां से अपने स्थान (पराढरपुर) को चले आए।

एक पर्य्यंक यवनाधिप को लौटा देकर; शेष पलंगों को श्रीयमुना जी में आपने छोड़ दिया ॥

आपने बिचारा कि "प्रथम श्रीपराढरीनाथ जी के मन्दिर में जा, आप के गुन गा, तब गृह को, चलूं"।

आके देखा तो बिट्ठलदेव जी के द्वार पर लोगों की बड़ी भीड़ है; "यदि पगदासी (पनही) बाहर छोड़ जाऊंगा तो मन में उसका खटका, दर्शन तथा पदगाने में विक्षेप करेगा"; इससे धीरे से कपड़े में कर, कटि में बांध, भीतर जा, झांझ हाथों में ले, तब आपने पद गाना चाहा।

इतनेही में किसी ने जूती का कोर देख लिया, सो उसने आप को पांच सात चोट लगा, धक्के दे, बाहर

निकाल दिया। परन्तु, आपके क्षमा-साधुता-युक्त मन में किंचित भी क्रोध न आया॥

(दो०) उमा जे रघुपति चरण रत, विगत काम मद क्रोध। निज प्रभु मय देखहिँ जगत कासन करहिँ विरोध॥

(१८०/८४१) टीका। कबित्त।

बैठे पिछवारे जाइ "कीनी जू उचित यह, लीनी जो लगाइ चोट, मेरे मन भाइयैं। कान दैकैं सुनो अब चाहत न और कछु; ठौर मोकों यही; नित नेम पद गाइयैं।" सुनत हीं आनिकरि करुना विकल भए फेरयौ द्वार इतै गहि मन्दिर फिराइयैं। जेतिक वे सोती मोती आब सी उतरि गई, भई हिये प्रीति, गहे पांव सुखदाइयैं॥ १३७॥ (६२९—४९२)

"आब آب"=पानी, द्युति, कान्ति, चमक।
"ठौर"=ठांव, ठिकाना, स्थान।

और जाके, मन्दिर के पीछे बैठ, प्रभु से बिनय करने लगे "हे प्रभो! यह आपने बहुतही उचित बात की कि जो मेरे दो चार धौलधक्के लगवा दिये, क्योंकि मैंने अपराध किया ही था; सो दण्ड देके आपने शुद्ध कर लिया; मुझे यह बहुतही अच्छा लगा। परन्तु अब मेरी प्रार्थना कान लगाके सुनिये; मैं और कुछ नहीं चाहता; केवल यही चाह मुझे है कि नित्य नेम से जो पद गाया करता हूं सो गाके सुनाया करूं; क्योंकि आप की शरण छोड़ मुझको दूसरा ठौर-ठिकाना ही नहीं"। यही प्रार्थना इस पद में भी है—

'हीन है जाति मेरी, यादवराय ! कलिमें "नामा" यहां काहे को पठाय ॥ पातुरि नाचैं, तालपखवाज बाजैं, हमारी भक्ति बीठल काहे को राजैं ॥ पांडवप्रभु जू बचन सुनी जै। "नामदेव स्वामी" दरशन दीजै' ॥

इस पद के सुनतेही भक्तवत्सल श्रीकरुणासिंधु प्रभु ने, कृपा से विकल हो सम्पूर्ण मन्दिर को नीचे से (जड़ से) फेर के उसका द्वार फिरा के, श्रीनामदेव जी के सन्मुख हो, दर्शन दिये। (उस मन्दिर का द्वार अब तक दक्षिण मुख है)

इस प्रसंग से यह निश्चय होता है कि जो मूर्ति श्रीबीठलदेव की, श्रीवामदेव जी ने सेवा के निमित्त अपनी पुत्री (श्रीनामदेव जी की माता) को तथा श्रीनामदेव जी को दी थी, सो इन्ही प्रधान मूर्ति का द्वीतय विग्रह, उनके गृह के आवान्तर में था।

यह अतिबिचित्र चरित्र देख, जितने स्रोत्री वेदपाठी पंडा पुजारियों ने धौल धक्के दिये दिलाए थे, तिन सब के मुख ऐसे सूख गये कि जैसे मोती का पानी उतर जाय। और सुखदाई श्रीनामदेव जी के विषे अति प्रीति भाव कर, चरणों में पड़, अपराध की क्षमा कराई। श्रीनामदेव जी की जय ॥

(१/८ ८/४ १/३) टीका । कवित्त ।

औचकहीं घरमांझ सांझही अगिनि लागी, बड़ो अनुरागी, रहि गई सोऊ डारियै। कहै "अहो नाथ! सब कीजिये जु अंगीकार," हँसे सुकुमार हरि मोही को निहारियै?" ॥ "तुम्हरो भवन और सके कौन आइ

इहां?" भए यों प्रसन्न छानि छाई आप सारियै। पूछैं आंनि लोग "कौनें छाई हो? छवाइ लीजै, दीजै जोई भावै"; "तन मन प्राण वारियै" ॥१३८॥ (१२९—४९१)

"रहिगई"=बचरही। "मोही को निहारीयै?" =क्या तू सब में मुझेही देखता है? सबको मुझमय ही समझता है? सबको मेराही रूप जानता है?

वार्त्तिक तिलक।

एक दिन सांझ के समय अचानक ही आपके घर में आग लगगई, आप तो बड़ेही अनुरागी थे पंच-तत्वादि सब को सानुराग भगवत रूपही देखाकरते थे, अतः जो २ वस्तु उस आग से पृथक भी रहगईथी, सो सब भी उठा २ के आप अग्नि में डाल के प्रार्थना करने लगे कि "हे नाथ! ये पदार्थ भी अंगीकार कीजिये।"

श्री नामदेवजी का ऐसा सर्वात्मकभाव देख, तथा सप्रेम बचन सुन, सुकुमार-शिरोमणि श्री हरि प्रगट हो, बिहँसके पूछने लगे कि "हे नामदेव! क्या अग्नि में भी मुझकोही देखते हो? अर्थात् अग्नि को भी मेरा ही रूप तुम जानते हो?" आपने हाथ जोड़ निवेदन किया कि "प्रभो! यह गृह आप का है इसमें आप को छोड़ दूसरा कौन आसकता है?"

इस्पर अत्यन्त प्रसन्न होकर रात्रिही भर में सम्पूर्ण गृह का छप्पर आपने अपनेही हाथों से सुन्दर अति बिचित्र छादिया।

सबेरे, लोग छप्पर की सुन्दरता देख २, चकित हो हो, आपसे पूछने लगे कि "यह छप्पर अति सुन्दर किसने छाया है? जिसने छाया हो उसको बताओ तो हम भी छवालें, जो मांगे सोई छवाई दें।"

आपने उत्तर दिया कि "भाइयो! वह छान छाने-वाला तो रुपएपैसे लेनेवाला नहीं है, किन्तु उसपर जब पहिलेही तन मन प्राण सर्वस्व न्यौछावर कर दीजिये तब वह ऐसी छावनी छादेता है॥

(दोहा) प्रभुता को सब कोउ चहै, प्रभु को चहै नकोय। तुलसी जो प्रभु को चहै आपहि प्रभुता होय॥

(१८२/८४२) टीका। कवित्त।

सुनौ और परचै जो आए न कबित्त मांझ, बांझ भई माता क्यों न? जौं न मति पागी है। हुतो एक साह, तुला दान को उछाह भयो; दयो पुर सबै, रह्यो नाम देव रागी है॥ "ल्यावौ जू बुलाइ" एक दोई तो फिराइ दिये; तीसरे सें आए "कहा कहो? बड़ भागी है"। "की-जिये जु कछु अंगीकार मेरो भलो होय," "भयो भलो तेरो, दीजै जौ पै आसा लागी है" ॥ १२९॥ (६२९-४९०)

"रह्यो"==शेष रहे।

"फिरायदिये" == कोरेही लौटा दिये।"

अब श्री नामदेव जी के परचै प्रभाव, जो श्रीना-भास्वामी जी के छप्पै में नहीं कहे गए हैं, सो सुनिये;

देखिये ऐसे भक्तिभरे श्रीनामदेवचरित्र सुनके श्रीसीताराम जी में तथा श्रीसीतारामनाम में जिस्की मति प्रेम से न पगी, उस्की माता बांझ क्यों न हुई? इस निज-जीवन-विटप-कुठार पुत्र को व्यर्थ ही क्यों उत्पन्न किया ?

पण्डरपुर में एक बड़ा साहु (सेठ) था, उत्साह पूर्वक सोने का तुलादान करके उसने सबको सुवर्ण दिया। परमानुरागी श्रीनामदेव जी ही एक रह गए।

आप के पास भी सादर बुलाने को मनुष्य भेजे; परन्तु आपने एक दो बेर तो उनको कोरेही लौटा दिया कि "मुझे नहीं चाहिये"। तीसरी बार बड़ी प्रार्थना पूर्वक उसने बुलाया तो आप जाके बोले कि "हे बड़भागी सेठ! कहो क्या कहते हो?" उसने विनय किया कि "आप कृपा करके इसमें से कुछ सुवर्ण अंगीकार कीजिये कि जिस्में मेरा भला हो।"

आपने उत्तर दिया कि "तेरा भला हुआ ही है, क्योंकि तूने सब को दिया। जिस्को आसा लगी हो उस्को दे; और यदि मुझको भी देने के हेतु तेरी आसा लगीही है तो दे॥"

(१८६३/८४२) टीका। कवित।

जाके तुलसी हैं ऐसे * तुलसी के पत्र मांझ, लिख्यो आधो राम नाम; "यासों तोल दीजिये"। "कहा परिहास करो? ढरो, ह्वै दयाल"; "देखि, होत कैसो ख्याल

याकों, पूरी करो, रीझिये" ॥ ल्यायो एक कांटो, लै चढ़ायो पात सोना संग; भयो बड़ो रंग, समहोत नाहिं छीजिये। लई सो तराजू जा सों तुलै मन पांच सात; जाति पांति हू को धन धस्यो, पै न धीजिये ॥१४०॥ (६२९—४८९)

। वार्तिक तिलक।

इतना कह के, श्री तुलसी जी के पत्र में आधा श्री राम नाम अर्थात् "रा" मात्र लिखके, आप बोले कि "यदि दियाही चाहता है तो इसी भर तौल के दे।" सुन के सेठ ने कहा कि "आप हँसी क्या करते हैं, इस पत्रहीभर मैं क्या दूं? मुझपर दयालु होके कुछ अधिक अङ्गीकार कीजिये।" श्रीनामदेव जी ने उत्तर दिया कि "मैं हँसी नहीं करता, देख तो इसका कैसा कौतुक होता है; इसभर तौल के पूरा तो कर, तब मैं तुझ पर अतिशय प्रसन्न हूंगा"

एक तोलने-का-कांटा ला के उसके एक ओर वह तुलसीदल और दूसरी ओर सोना साहु ने चढ़ाया; परन्तु बड़ाही रंग मचा कि वह सोना श्रीपत्र के तुल्य न हुआ, वरन घट गया। तदनन्तर, साहु ने एक ऐसी तुला (तराजू) मँगवायी जिसमें पाचसात मन वस्तु तुल सके; और उसपर वह श्रीनामपत्र रख के अपने घर भर का स्वर्णादिक सब धन चढ़ाया तब भी श्रीपत्र वाले पल्ले ने भूमि न छोड़ी।

फिर, अपने जातिभाइयों का धन भी मांगमांगके पल्लेपर चढ़ाता गया, तथापि पूर न पड़ा, धन का पल्ला अतीव हलकाही रहा। उन सब का प्रिय न हुआ॥

"ख्याल"=रंग, खेल, कौतुक। "रंग"=ख्याल, खेल, कौतुक, तमाशा। "न धीजियै"=प्रिय न हुआ, पूर्ण न हुआ, पूरा न पड़ा। "देखि"=देखु। "तराजू (ترازو)"=तुला।

*"जाके तुलसी हैं ऐसे"—

इसका अर्थ कोई २ महात्मा यों करते हैं:—

जिस श्रीनामदेव जी के, श्रीतुलसी जी ऐसे इस प्रकार से हैं, सर्वस्व हैं, (जैसा आगे के संघट से प्रत्यक्ष है,) सो श्रीनामदेव जी ने श्रीतुलसीपत्र पर "रा" लिखा। (श्रीतुलसी जी वैष्णव मात्र के सर्वस्व हैं विशेषतः श्रीनामदेव जी के॥)

(१६४ / ८४२) टीका। कवित्त।

पस्यो सोच भारी, दुःख पावें नर नारी, नामदेव जू बिचारी "एक और काम कीजियै। जिते व्रत दान और स्नान किये तीरथ मैं करियै संकल्प या पैं जल डारि दीजियै"॥ करेऊ उपाय, पात पला भूमि गाड़े पांय, रहे वे खिसाय, कह्यो "इतनोई लीजियै"। "लै कैं कहा *करैं? सरबरहू न करैं, भक्ति भाव सों लै भरैं हिये, मति अति भीजिये"॥ १४१॥ (६२९—४८८)

"खिसाय"=लजाय। "सरबर"=समता।

* पाठान्तर "कहां धरैं?"।

वार्त्तिक तिलक।

यह अर्द्ध रामनाम युक्त तुलसीपत्र के गौरव, महत्त्वका कौतुक देख के, सेठ के घर के सब स्त्री-पुरुषवर्गों को बड़ाही सोच और दुख हुआ कि कैसे पूरा हो।

श्रीनामदेव जी ने विचार किया कि "श्रीरामनाम के सामने धनादिकों की तुच्छता तो दिखा ही दी, परन्तु अब यह भी दिखा दूं कि श्रीनाम के आगे सब धर्म कर्म भी हलके (न्यून) ही हैं;" अतः आप ने कहा कि "सुनो एक काम और करो कि तुम लोगों ने जितने व्रत उपवास, तीर्थस्नान, दान, इत्यादि सुकर्म-धर्म किये हों, उन सब को भी संकल्प करके वह जल इस्पर छोड़ दो अर्थात् सब पुण्य भी चढ़ादो"।

यह उपाय भी किया गया; तथापि श्रीनामपत्र वाला पल्ला भूमि में पांव जमाए ही रहा; यथा (दो०) "भूमि न छांड़त कपि चरण, देखत रिपु मद भाग। कोटि विघ्न ते सन्त कर-मन जिमि नीति न त्याग॥१॥

तब तो वे सब अति लज्जित संकुचित होके कहने लगे कि "महाराज! आप इतनाही ले लीजिये"। श्रीनामदेव जी ने उत्तर दिया कि "यह सब धन और पुण्य लेके मैं क्या करूंगा? क्योंकि तुम सब ने स्पष्ट देखाही कि मेरा धन जो श्री राम नाम है, उस्के आधे के भी तुल्य ये सब नहीं ठहरे; इस्से श्रीरामनाम और श्रीभक्तिही से मैं अपने हृदय को संतुष्ट रक्खता हूं और रक्खूंगा; किस लिये कि मेरी मति प्रेमभक्ति रस ही

से भीगी है । इस्से तुम लोग भी धनधर्म्माभिमान छोड़ श्रीरामनाम की भक्ति रस में अपनी बुद्धि को भिगाके भव पार हो" ॥ (दो०) "राका रजनी हरि भगति, राम नाम सोइ सोम । अपर नाम उडुगण विमल, बसैं भक्त उर व्योम ॥ "

(१९५/८४२) टीका । कवित्त ।

कियो रूप ब्राह्मन कों दूबरो निपट अंग, भयो हिये रंग, ब्रत परिचै को लीजियें । भई एकादशी, अन्न मांगत "बहुत भूखो," "आजु तो न दैहों भोर चाहौ जितो दीजियें" ॥ कस्यो हठ भारी मिलि दीऊ, ताको शोर पस्यो; समझावैं नामदेव याको कहा खीजियें । बीते जाम चारि मरि रहे यों पसारि पांव, भाव पै न जानैं दई हत्या नहीं छीजियें ॥ १४२ ॥ (६२९—४८७)

"परिचै" = परीक्षा, जांच, पर, प्रभाव, चैप्रभुता ।

"शोर (,,~)" = हल्ला, कोलाहल, घने शब्द ।

वार्तिक तिलक ।

अब जिस प्रकार स्वयं प्रभु ने एकादशी ब्रत का पन श्री नामदेवद्वारा दृढ़ाया, सो आख्यायिका कहते हैं—

प्रभु के हृदय में यह रंग (कौतुक) आया कि "एकादशी निष्ठा की परीक्षा लूं; " इस हेतु अत्यन्त दुर्बल ब्राह्मण का रूप बना, एकादशी को सबेरेही आ, श्रीनामदेव जी से बोले कि "मैं कई दिनों का बहुत ही भूखा हूं, मुझ को अन्न दो । " आप ने उत्तर दिया कि "आज एकादशी ब्रत है, इस्से अन्न भोजन न दूंगा; कल सबेरे जितना मांगोगे उतना दूंगा "

ब्राह्मण जी ने बड़ा भारी हठ किया कि "मैं अन्न अभी अभी लूंगा; आप ने भी हठ किया कि "आज तो मैं अन्न नहीं ही दूंगा"। दोनों के हठ युक्त उत्तर प्रत्युत्तर का बड़ा हल्ला मचा, सुन के बहुत लोग इकट्ठे हो गए; और श्रीनामदेव जी से कहने लगे कि "हम इस मरणप्राय ब्राह्मण पर क्रोध करके क्या कहें? पर तुम्हें समझाते हैं कि दे दो"। तथापि, एकादशी को अन्न देना निषेध जान के, आप ने नहींही दिया।

जब चार पहर बीत गए, तब अन्नाभिलाषी भूखे ब्राह्मण देव, पांव फैलाके मर गए।

लोग आप के भाव निष्ठा को न जान के, कहने लगे कि "नामदेव को ब्राह्मण ने ब्रह्महत्या दी, इनको छूना न चाहिये, अब यह हत्या छूटनेवाली नहीं है"॥

(१८६/८४२) टीका। कवित्त।

रचिकै चिता कों, विप्र गोद लैकै, बैठे जाइ, दियो मुसुकाइ "मैं परीछा लीनी तेरी है। देखि सो सचाई, सुखदाई, मन भाई मेरे"; भए अन्तर्धान, परे पायँ प्रीति हेरी है॥ जागरन मांझ, हरि भक्तन को प्यास लगी, गए लैन जल; प्रेत आनि कीनी फेरी है। फेट तें निकासि ताल, गायो पद ततकाल; बड़ेई कृपाल रूपधर्यो छवि ढेरी है॥ १४२॥ (६२९—४८६)

"फेट" == कटि बन्धन बस्त्र।

वार्तिक तिलक।

तदन्तर, श्रीनामदेव जी चिता रच, मृतक विप्रके शरीर को गोद में लेकर चितापर जा बैठे, और किसी आज्ञाकारी जन से कहा कि "अग्नि लगा दो"

तब तो श्री एकादशी पति प्रभु ने मुस्क्याके कहा कि "प्रिय भक्त! जलो मत, तुम्हारे हृदय के शीतल करनेवाले मैं ही ने तुम्हारी परीक्षा ली है, तुम्हारे व्रत की तथा ब्रह्मण्यता की सचाई देखी, सो मझको बड़ोही प्यारी सुखदाई लगी।" यह कहके श्रीप्रभु उस चिताही पर से अन्तर्धान हो गए।

इस प्रकार, वैष्णवधर्म तथा ब्राह्मण, श्रीतुलसी, श्रीराम नाम, और श्रीप्रभु में नामदेव जी की परमप्रीति देख, एवं प्रभु के चरित्रो की विचित्रता विचार, सब लोग जय जय कार कथनपूर्वक श्रीनामदेव जी के चरणों में पड़के प्रशंसा करने लगे।

अन्य एकादशी की रात्रि में आप के गृह विषे जागरन उत्सव हो रहा था; उसमें हरिभक्तों को प्यास लगी, आप स्वयं जलाशय में जल लेने गए; क्योंकि वहां एक बड़ा प्रेत रहता था इस्से और किसी को न भेजा। सो जब आप वहां पहुंचे तो कई प्रेतों को साथ लिये वह प्रेत बड़ा भारी विकराल भयंकर रूप धारण कर आप के सन्मुख आखड़ा हुआ। उसको देख, आपने उसमें भगवतभाव ही आरोपण किया क्योंकि आप की दृष्टि में तो और भाव रहही

नहीं गया; इस्से अपने पेट से ताल अर्थात् कांश्यताल (झांझ) वा करताल निकाल के तत्कालही यह * पद बनाके सप्रेम गाने लगे।

*ये आए मेरे लम्बकनाथ! धरती पांव स्वर्ग लौ माथो जोजन भरि भरि हाथ॥ शिव सनकादिक पार न पावैं, तैसेइ सखा विराजत साथ। नामदेव के स्वामी अन्तर्यामी कीन्हयो मोहिं सनाथ॥ १॥

सुन्तेही सर्वान्तर्यामी परम कृपालु ने प्रेतरूपों को बिनाशकरके, परम छविराशि रूप धारण कर दर्शन दिया। निज रूपामृत पिलाके कहा कि "जल ले-जाव। जल लाके आप ने भगवत भक्तों को पिलाया श्रीनामदेव जी की जय॥

(१८७/८४२) छप्पय।

जयदेव कविनृप चक्कवै; खँड मंडलेश्वर आन कवि। प्रचुर भयो तिहुँ लोक गीत गोविन्द उजागर। कोक काव्य नव रस सरस सिंगार को सागर। अष्टपदी अभ्यास करै तिहुँ बुद्ध बढ़ावैं। (श्री) राधारमन प्रसन्न सबन निश्चय तहँ आवैं॥ संत सरोरुहखंड कों "पद्मा" पति सुखजनक रवि। जयदेव कवि नृप चक्कवै खँडमंडलेश्वर आन कवि॥ ३९॥ (४४/२१३)

"चक्कवै" = चक्रवर्ती, सातो द्वीप का राजराजेश्वर । "खण्डेश्वर" = नव खण्डों में से एक खण्ड का महाराज । "मण्डलेश्वर" = सौ दो सव कोस के मण्डल का राजा । "खण्ड" = कदम्ब अर्थात् समूह । "सरोरुह-खण्ड" = कमल के समूह ॥

वार्तिक तिलक ।

श्री जयदेव जी ।

कलियुग में संस्कृत के कवियों में, श्रीजयदेव कविराज, चक्रवर्ती महाराज सरीखा हुए; और, और सब कवि खण्डेश्वर वा मण्डलेश्वर राजाओं के सरिस हैं। उक्त महा-कवि-कृत अति उजागर "श्रीगीत गोविन्द" काव्य, देव मनुष्य नाग इन तीनों लोकों में प्रचुर (विख्यात) हुआ; कैसा "गीतगोविन्द" है कि, कोकशास्त्र का, काव्य के सम्पूर्ण अङ्गों का, नवो रसों का, तथा सरस शृङ्गार का, रत्नाकर समुद्र ही है।

और, श्रीगीतगोविन्द की अष्टपदियां जो कोई अभ्यास करे (पढ़े), उसकी बुद्धि को बढ़ाती है। तथा जो सप्रेम गान करता है तो श्रीराधावल्लभ जी वहां उसके सुन्ने के लिये प्रसन्न होके प्रगट वा गुप्त रूप से अवश्यही आते हैं।

सन्त रूपी कमल समूहों को सुख उत्पन्न करने वाले, श्रीपद्मावती जी के पति (श्रीजयदेव जी) सूर्य्य समान हुए।

(१८८/८४६) टीका । कवित्त ।

किन्दुबिल्लु ग्राम, तामैं भए कविराज राज, भर्‌यो

रसराज हिये, मन मन चाखियैं। दिन दिन प्रति रूंख रूंख तर जाइ रहैं, गहैं एक गूदरी, कमंडल कों, राखियैं॥ कही देवै विप्र सुता जगन्नाथदेव जू कों, भयो जब समै, चल्यो दैन प्रभु भाखियैं। "रसिक जैदेव नाम मेरोई सरूप, ताहि देवौ ततकाल अहो, मेरी कहि साखियैं" ॥१४४॥ (६२९-४८५)

"रसराज"=रसों का राजा 'शृङ्गार रस'॥

वार्त्तिक तिलक।

सब कविराजों के राजा श्री जयदेव जी पूर्वदेश में "किन्दु बिल्व" नामक ग्राम में "भोजदेव" पिता और "राधा देवी" माता से, ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुए; सो आप के हृदय में प्रभु संबन्धी रसराज (शृङ्गार रस) भरा था, परन्तु उस्का स्वाद मनही मन में लिया करते थे। और विरक्त (वैराग्यवान) कैसे थे कि गृह को त्याग के बन में भी एक वृक्ष तले एकही दिवस रहते थे, दो दिन भी एक के नीचे नहीं; और तनु-क्रिया-निर्वाह के हेतु केवल एक गुदड़ी (कन्था) और एक कमण्डल मात्र रखते थे।

उसी काल की वार्ता है कि एक ब्राह्मण श्रीजगन्नाथ जी को अपनी कन्या प्रतिज्ञा पूर्वक देने को कह गया; जब वह लड़की अवस्था में उस योग्य हुई, तो उस्को देने के लिये वह विप्र श्रीजगन्नाथ जी के पास लाया; प्रभु की आज्ञा हुई कि "जयदेव जी नामक आश्चर्य रसिक भक्त मेरेही स्वरूप हैं, सो इसी क्षण

लेजाके और मेरी आज्ञा उन्से सुनाके, यह अपनी सुता उन्ही को दे दो"।

(१६६१/८४२) टीका। कवित्त।

चल्यो द्विज तहां, जहां बैठे कविराजराज, "अहो महाराज! मेरी सुता यह लीजियै"। "कीजिये बिचार, अधिकार, बिसतार जाके, ताहि को निहारि, सुकुमारि यह दीजियै"॥ "जगन्नाथ देव जू की आज्ञा प्रतिपाल करो, ढरो मति धरो हिये; ना तो दोष भीजियै"। "उनिको हजार सोहैं, हमको पहार एक; ताते फिरि जावो, तुम्हैं कहा कहि खीजियै" ॥१४५॥ (६२१-४८४)

वार्तिक तिलक।

श्रीजगन्नाथ जी की आज्ञा सुन, कन्या लिये हुए ब्राह्मण जहां कबिराजराज श्रीजयदेव जी श्रीप्रभु का स्मरण करते हुए बैठे थे, वहां जाके आप से प्रार्थना की कि "हे महाराज! यह अपनी कन्या मैं आपको अर्पण करताहूं इसका कर ग्रहण कीजिये"। आप ने उत्तर दिया कि "आप विचार कीजिये, जिसको कन्या लेने का अधिकार और गृहस्थाश्रम का विस्तार हो, उसी को यह सुन्दरि कुमारी दीजिये"।

ब्राह्मण बोले कि "महाराज! मैं जो अपनी इच्छा से कन्यादान करता तो विभव विचार अवश्य करता; परन्तु मैं तो श्रीजगन्नाथदेव जी की आज्ञा से आप को कन्या दे रहा हूं, इस्से उनकी आज्ञा को आप भी

प्रतिपाल कीजिये; और कन्या को ग्रहण करना हित मान, अपनी मति में धारण कर, प्रभु की आज्ञा अनुवर्तन कीजिये; नहीं तो 'प्रभु-आज्ञा-भंग' का बड़ा भारी दोष आप को लगेगा।"

इसपर, श्रीजयदेव जी बोले कि "मैं श्रीजगन्नाथजी की ऐसी आज्ञा पालन करने में समर्थ नहीं हूं। वे प्रभु समर्थ हैं उनको सहस्रों (हज़ारों) सुन्दर स्त्रीयां शोभा देती हैं, पर मुझे तो एक ही स्त्री पहाड़ है, अर्थात् जैसे दुर्बल निर्बल मनुष्य को पहाड़ का चढ़ना उतरना लांघना अगम होता है, अथवा पहाड़ का उठाना असक्य है, वैसेही मुझको एकही स्त्री का सँभाल अतिशय अगम असह्य है, इस्से आप यहां से चलेही जाइये; हम आप को और क्या बात कह के रिसायँ"॥

(१९०/८४२) टीका । कवित्त ।

सुतासों कहत "तुम बैठि रहौ याही ठौर, आज्ञा सिरमौर मोपैं* नाहीं जाति टारी है"। चल्यो अनखाइ समझाइ हारे बातनि सों; "मन! तूं समझ, कहा कीजे? सोच भारी है!" बोले द्विज-बालकीसों "आप ही बिचार करो, धरो हिये ज्ञान, मो पैं जाति न सँभारी है"। बोली कर जोरि "मेरो जोर न चलत कछू, चाहौ सोई होहु, यह वारि फेरि डारी है"॥१४६॥(६२९-४८३)

"सिरमौर" = शिरोमणि। "जोर (,,;)"=बल। "अनखाइ" = अमर्ष करके, सक्रोध। "वारि फेरिडारी"=न्योछावर हुई। "बालकी." = बालिका. कन्या, लड़की।

*पाठान्तर 'मेरे'।

वार्तिक तिलक।

तब, भक्त ब्राह्मण ने अपनी कन्या से कहा कि "तू इसी ठौर इन्हीं के पास बैठ रह, क्योंकि त्रयलोक्य शिरोमणि श्रीजगन्नाथ जी की आज्ञा मुझ से टारी नहीं जाती;" ऐसा कह, कन्या को बिठला (बैठाय), ब्राह्मण कुछ अनखाके चल दिया। आप बहुत प्रकार की वार्ता से ब्राह्मण को समझा के हार गए, परन्तु ब्राह्मण ने नहीं ही माना, आप की एक न सुनी।

आप अपने चित्त में कहने लगे कि "रे मन! तू समझ, विचार कर, कि अब क्या करना योग्य है? यह बड़े भारी सोच की वार्ता आ पड़ी!"

और, विप्रसुता से बोले कि "तुम अपने पति की योग्यता तथा योगक्षेम निर्वाह आदिक को विचार करो, जैसा करना उचित है वैसा ज्ञान हृदय में धारण करो; मेरे पास मत बैठी रहो; क्योंकि तुम्हारा सारसँभार मुझ से नहीं होने का।"

श्रीपद्मावती जी आप की पूर्व जन्म सम्बन्ध-सौभाग्यवती तो थीं ही, यह सुन, हाथ जोड़, बोलीं कि "नाथ! मेरा कुछ बल विचार नहीं चलता; अब जो चाहे सो हो, मैं तो पिता के देने से तथा प्रभु आज्ञा से, आप को श्रीजगन्नाथ ही जान, अपना नाथ मान,

आप के ऊपर तन मन से न्योछावर हो, आप की हो चुकी ॥"

(१९१/८४२) टीका। कवित्त।

जानी जब "भई तिया किया, प्रभु जोर मो पैं, तो पैं एक झोपरी की छावा करि लीजियै"। भई तब छाया, श्याम सेवा पधराइ लई, "नई एक पोथी मैं बनाऊं" मन कीजियै॥ भयो जू प्रगट "गीत" सरस "गोविन्द" जू को, मान में प्रसंग "सीस मंडन सो* दीजियै"। एही एक पद मुख निकसत सोच पर्यो, धर्यो कैसे जात? लाल लिख्यो, मति रीझियै॥ १४७॥ (६२९—४८२)

* "पाठान्तर"="को"।
"छाया"=छांह, कुटीर, झोपड़ी, गृह।
"धर्यो कैसे जात?" = किस प्रकार से लिखा जासके?

वार्तिक तिलक।

इस प्रकार जब श्री पद्मावती जी से सुबुद्धि-विनय प्रीति-पतिव्रत-भरा हुआ उत्तर श्रीजयदेव जी ने सुना, तब जाना कि "यह मेरी पत्नी हुई, क्योंकि श्रीजगन्नाथ जी ने मुझ पर अपनी प्रभुता का बल किया, अब मेरी कुछ नहीं चलने की। इस्से उचित है कि एक झोंपड़ी की छाया कर लूं" ऐसा विचार सज्जनों से कहकर एक कुटी बनवा ली।

जब छाया हो गई, तब श्रीश्यामसुन्दर जी की मूर्ति सेवा के हेतु पधराली; क्योंकि गृह कुटी में रह

के, जो भगवत मूर्ति की पूजा कर अन्न को भोग लगा के प्रसाद नहीं पाते, अपने ही लिये बना के खालेते हैं, वे पाप ही भोजन करते हैं (ऐसा श्रीगीता जी में लिखा है। श्लोक। यज्ञ शिष्टा शिनः संतो मुच्यंते सर्व किल्बिषैः। भुंजते तेत्वघं पापाश्ये पचन्त्यात्म कारणात॥ (३।१३)॥

कुछ काल में श्री प्रभु प्रेरणा से आपके हृदय में इच्छा हुई कि "मैं श्री प्रभु चरित्र मय एक नवीन पुस्तक बनाऊं" तब "श्रीगोविन्द" जी का अतिसरस "गीत" अर्थात् "श्रीगीत गोविन्द" प्रगट हुआ।

उसमें जब श्रीराधिका जी के महामान का प्रसङ्ग आया, तो उस स्थान पर ध्यान भावना में आपको श्याम सुन्दर जी का विनय श्रीप्रिया जी प्रति यह पद स्फुरित हुआ कि "स्मर-गरल खण्डनं मम शिरसि मण्डनं देहि पदपल्लवमुदारम्" (हे प्रिये! कन्दर्प का विष खंडन करनेवाला और मेरे मस्तक का मण्डन, भूषण, अपना उदार पदपल्लव मेरे सीस पर रख दीजिये); इसी एक पद के मुख से निकलते ही, श्री जयदेव जी को सोच संकोच हुआ, कि "इस प्रकार का पद पोथी में कैसे लिखूं?"

तब सोच विचार करते स्नान को चले गए। इतने में श्रीराधारमण जी ने, जयदेव जी के स्वरूप से आके, जयदेव जी की मति में रीझ के, जो पद स्फुरित

हुआ था वही पद पुस्तक में आपही लिख दिया॥

पुनः जब जयदेव जी स्नान करके आए और पुस्तक में वह पद लिखा देखा, तब पद्मावती जी से पूछा कि "यह पद किसने लिख दिया?" उनने कहा "अभी अभी आपही तो आके लिख गये हैं" जयदेव जी ने कहा कि "मैं ने तो नहीं लिखा" तब यह निश्चै हुवा कि प्रभु आपही लिख गए हैं॥

($\frac{१९२}{८४२}$) टीका। कवित।

नीलाचल धाम तामैं पंडित-नृपति एक, करी यही नाम धरि पोथी सुख दाइयै। द्विजनि बुलाइ कही "वही है, प्रसिद्ध करो, लिखि लिखि पढ़ौ देश देशनि चलाइयै"॥ बोले मुसिकाइ विप्र क्षिप्र सो दिखाइ दई "नई यह कोऊ मति अति भरमाइयै"। धरी दोऊ मंदिर मैं जगन्नाथ देव जू के; दीनी यह डारि, वह हार लपटाइयै॥ १४८॥ (६२९—४८१)

वार्त्तिक तिलक॥

जब श्री "गीतगोविन्द" जी बन के पूर्ण हो गए और प्रभु अनुग्रहीत जान सब कोई पढ़ने गाने लगे, तब इस्को देखके श्रीजगन्नाथ धाम का राजा जो पण्डित था, सो उसने भी यही (गीतगोविन्द) नाम रख के दूसरा एक

सुखदाई पुस्तक बना, ब्राह्मण पण्डितों को बुला, पुस्तक देकर, बोला कि "यह वही गीतगोविन्द है इस्को लिख २ के पढ़ो, और देश देश में प्रसिद्ध करो चलाओ।"

यह सुन, पण्डितों ने श्रीजयदेव जी कृत गीतगोविन्द राजा को दिखा के मुस्क्याके उत्तर दिया कि "राजन्! वह गीतगोविन्द तो देखिये यह है, और यह दूसरी किसी ने नई बनाई है, हमारी मति में अत्यन्त भ्रम होता है"।

इसपर, दोनों पुस्तकें श्रीजगन्नाथ जी के मन्दिर में रख दी गईं। तब प्रभु ने इस राजावाली पुस्तक को अलग फेंक के, 'श्रीजयदेव-कृत गीतगोविन्द' को पदिक हार की नाईं अपने हृदय में लपटा लिया॥

(१/८ ९/४ ३/२) टीका। कवित।

पर्यो सोच भारी, नृप निपट खिसानो भयो, गयो उठि सागर मैं, "बूड़ों यही बात है। अति अपमान कियो; कियो मैं बखान सोई, गोई जात कैसें?" आंच लागी गात गात है॥ आज्ञा प्रभु दई "मत बूड़े तूं समुद्र मांझ, दूसरो न ग्रन्थ ऐसो, वृथा तनुपात है। द्वादश सुश्लोक लिखि, दीजे सर्ग द्वादश मैं, ताहि संग चले जाकी ख्याति पात पात है" ॥१४९॥ (६२९–४८०)

"पात पात"=सर्व माहिँ, सब में ॥

वार्त्तिक तिलक।

जब श्रीजगदीश जी ने उस पुस्तक का आदर करके राजा की पोथी का निरादर कर दिया, तब राजा को बड़ा ही शोक हुवा, तथा अति संकुचित गलितमान होकर, उठके समुद्र की दिशि चल दिया; और मन में यह निश्चय किया कि "अब मैं समुद्र में डूब के मर जाऊं, सो भला है; क्योंकि जो जयदेव जी ने कहा सोई मैंने बखान किया और प्रभु ने मेरा इस प्रकार का अतिशय अपमान किया; तिसको मैं कैसे छिपाऊं।" इस प्रकार राजा सर्वाङ्ग संतप्त होकर डूबने ही तो लगा।

सो देख, भक्तवत्सल करुणाकर श्रीजगन्नाथ जी ने प्रगट होकर, आज्ञा दी कि "तुम समुद्र में मत डूबो, मैं सत्य सत्य कहता हूं "जयदेव जी के ग्रन्थ सरीखा तुम्हारा तथा और कोई ग्रन्थ है ही नहीं; तुम वृथा ही शरीर त्याग करते हो। एक बात करो कि अपने ग्रन्थ के बारह श्लोक, जिस गीत गोविन्द की प्रसिद्धता बिराट रूपी वृक्ष के पत्रों पत्रों में है अर्थात् मनुष्यों मनुष्यों में है, उसी में लिख दो; उसी के साथ साथ तुम्हारे भी द्वादश श्लोक चलैंगे (प्रसिद्ध होंगे)।"

राजा ने हर्ष पूर्वक प्रभु की आज्ञा मानकर ऐसाही किया॥

(११४/८४२) टीका । कवित्त ।

सुता एक माली को जु बैंगन-की-बारी मांझ तोरै, "बनमाली" गावै कथा सर्ग पांच की । डोलैं जगन्नाथ पाछें, काछें ऋङ्ग मिहीं झँगा, "ऋाछे" कहि घूमैं सुधि ऋावै बिरहांच की ॥ फट्यौ पट देखि नृप पूछी "ऋहो भयो कहा ?" "जानत न हम"; "ऋब कही बात सांच की"। प्रभु ही जनाई "मन भाई मेरे वही गाथा" ल्याए वही बालकी कौं पालकी मैं नांच की ॥ १५० ॥ (६२९—४७९)

"बिरहांच"=बिरह की आंच, बिरहाग्नि ताप । "नांच की"= नृत्य किया ।

वार्तिक तिलक।

एक दिन एक माली की कन्या बैंगन (भांटा) की बारी में बैंगन तोड़ती हुई श्रीगीतगोबिन्द के पंचम सर्ग की कथा का यह पद गाती थी "न कुरु नितम्बिनि गमन बिलम्बन मनुसर तं हृदयेशम् ॥ धीरसमीरे यमुनातीरे बसति बने बनमाली" (ऋर्थ दूती श्रीराधिका जी से कहती है कि हे नितम्बिनि ! ऋब गमन में बिलम्ब मत करो; उन प्राणप्रिय के समीप चलो । वे बनमाली बनविषे यमुना के कूल में धीर समीर कुंज में बसते हैं ।) इसी पद को सुनते हुए उस माली की सुता के पीछे पीछे श्रीजगन्नाथ जी निज अंगमें झीना झंगा (जामा) पहिने फिरतेडोलतेथे; ऋौर

जब वह तान तोड़ती थी तब प्रेममादिकता से झूम के "बहुत अच्छा" कहते थे, क्योंकि पद सुनतेही उस समय के विरहाग्नि की सुधि आ जाती थी, अर्थात् बिरहाग्नि से संतप्त हो के उस दूती को प्रिया जी के पास आपही ने भेजा था।

जब वह कन्या अपने घर को चली गई तब बैंगन के कंटकों से झंगा फाड़ के आप मन्दिर में आए और उसी समय पुरुषोत्तमपुरी का राजा दर्शन करने आया; सो फटे हुए वस्त्रों को देख के पंडा से पूछा "क्यों जी! श्रीजगन्नाथ जी के ये वस्त्र कैसे फटे हैं? सत्य २ कहो, क्या हुआ है?" पंडा ने कहा "हम नहीं जानते कि क्या हुआ है॥"

तब, प्रभुही ने जनाया कि "वह माली की कन्या बैंगन की बारी में गाती थी, सो हम सुनते थे; इस्से वस्त्र फट गए हमको वह कथा अतिही प्रिय लगी है" तात्पर्य्य "उसको बुला के गवाओ"।

ऐसी आज्ञा सुन के उसी क्षण पालकी पर चढ़ा के उस कन्या को लाए। आके गान और नृत्य करके उसने प्रभु को प्रसन्न किया॥

(१९५ / ८४२) टीका। कवित्त।

फेरी नृप डौंडी, यह औंडी बात जानि महा; कही "राजा रंक पढ़ें नीकी ठौर जानि कैं। अक्षर मधुर और

मधुर स्वरनि हि सों गावैं जब लाल प्यारी ढिग हिले मानिकैं" ॥ सुनि यह रीति एक मुग़ल ने धारि लई, पढ़ै चढ़ै घोड़े आगे श्याम रूप ठानिकैं। पोथी कौ प्रताप स्वर्ग गावत हैं देवबधू आपही जु रीझि लिख्यो निज कर आनिकैं ॥ १५१ ॥ (६२९-४७८)

"ओंड़ी" = गहिरी, गंभीर। "मुग़ल" مغل=यवन जाति बिशेष।

वार्तिक तिलक।

श्री गीतगोविन्द इस प्रकार प्रभु के। प्रिय जानकर श्री पुरुषोत्तमपुरी के राजा ने सर्वत्र डौंड़ी (ढँढोरा) फिरवा दिया, क्योंकि उक्त ग्रन्थ के गान की वार्ता बड़ी ही गहिरी जानी; और यह पुकार करा दिया कि "राजा हो अथवा रंक हो परन्तु श्री गीतगोबिन्द को अच्छे ठौर ठिकाने पर पढ़ै और मधुरता से अक्षरों के उच्चारण कर मधुरही स्वर से गान करै, तथा गाते समय अपने मन में ऐसा निश्चय मान ले कि श्रीराधिकाश्याम जी मेरे समीप ही में सुन रहे हैं"।

राजा की पुकार कराई हुई इस वार्ता के। एक मुगल जाती के यवन ने सुनकर अपने मन में निश्चय कर धर लिया; और, घोड़े पर चढ़ा चला जाता श्रीगीत गोविन्द का पद गान करता था। इसके बिश्वास पर रीझ के श्रीश्यामसुन्दर जी ने अनूप रूप धारण कर आगे आके दर्शन दिया; तथा संसार सागर से उसको मुक्त भी कर दिया॥

श्रीगीतगोविन्द पुस्तक के प्रताप को स्वर्ग में देव वधू गान करती हैं क्योंकि जिस्से रीझ के स्वयं प्रभु ने आके निज कर कमल से पूर्वकथित ("स्मर गरल खण्डनं" इत्यादि) पद लिख दिया। इस्से इस की महिमा जहां तक कही जाय सो सब युक्त ही है ॥

(१२६) टीका। कवित्त।

पोथी की तो बात सब कही मैं सुहात हिये; सुनो और बात जामे अति अधिकाइयें। गांठि में मुहर मग चलत मैं ठग मिले, "कहो कहां जात?" "जहां तुम चलि जाइयें॥ जानि लई बात, खोलि द्रव्य पकड़ाइ दियो, लियो चाहो जोई जोई सोई मोकों ल्याइयें। दुष्टनि समुझि कही "कीनी ईनी विद्या अहो आवै जो नगर इन्हें बेगि पकराइयें" ॥१५२॥ (६२९-४७७)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीगीतगोविन्द पुस्तक की रचना और प्रभु प्रिय होने की, अपने तथा सज्जनों के हृदय की, सुहाती वार्ता तो मैंने सब कह ही दी; परन्तु श्रीजयदेव जी के चरित्र की और वार्ता सुनिए कि जिस्मे उनकी शान्ति सहनशीलता साधुता की अति अधिकाई है।

एक समय आप सन्तसेवा भंडारा के वास्ते अन्न घृतादि सामग्री लेने को द्रव्य मोहर गांठ में बांधे हुए ग्रामान्तर को चले जाते थे दैवयोग मार्ग में कई

ठग चोर मिल गए; तब आपने पूछा कि "कहाँ जाते हो ?" चोरों ने कहा "जहां तुम जाते हो।" तब श्रीजयदेव जी ने जान लिया कि "ठगहैं ऐसा न हो कि द्रव्य के हेतु मेरे भजन-सहायक शरीर का घात करें;" इस्से गांठ से छोर (खोल के) सब द्रव्य चोरों को दे दिया। परन्तु दुष्ट इस साधुता को उलटा ही समझ आपस में कहने लगे कि देखो इसने यह अपनी बुद्धिमानी की है कि अभी द्रव्य दे दूं; जब नगर ग्राम आवै तब इन सबों को शीघ्र पकड़ा दूँ ॥

(१९१/८४२) टीका । कवित ।

एक कहै "डारौ मार, भलो है बिचार यही," एक कहै "मारौ मत, धन हाथ आयो है"। "जौ पै ले पिछान कहूं कीजियै निदान कहा," हाथ पांव काटि बड़ो गाड पधरायो है ॥ आयो तहां राजा एक, देखि कै बिबेक भयो, छयो उजियारो, औ प्रसन्न दरसायो है। बाहिर निकासि मानो चन्द्रमा प्रकाश रासि; पूछ्यो इतिहास; कह्यो "ऐसो तनु पायो है" ॥ १५३ ॥ (६२९—४७६)

वार्तिक तिलक ।

ऐसा सुन एक ठग बोला कि जब इसने ऐसी चातुरी की है, तो इसको मारडालना ही अच्छा विचार है" यह सुन और ठग कहने लगे कि "मारो

मत क्योंकि धन तो हमारे हाथ आही गया अब मार डालने का क्या काम है?' तब दूसरे दुष्ट बोले कि भला जो कहीं पहिचान के पकड़ा दे तब क्या करोगे?" इत्यादि कुतर्क कुसंमत करके श्रीजयदेव जी के हाथों तथा पगों को काट कर बड़ेभारी गड्ढे में डाल दिया और चले गए।

तदनन्तर उस बन में आके एक राजा ने श्रीजयदेव जी को देखा; उसी क्षण उसके हृदय में ज्ञान उदय हुआ और चमत्कार क्या देखता है कि हाथ पग तो कटे हैं परन्तु आप के तेज की उजियाली हो रही है और मुखारबिन्द प्रसन्न है तब राजा ने आप को गड़हे से निकलवा कर बाहर बैठाल के दर्शन किया मानो अनेक चन्द्रमाओं के राशि का प्रकाश हो रहा है। फिर आप से हाथ पग कटने का वृत्तान्त पूछा। श्रीजयदेव जी ने कहा कि "मुझे इसी प्रकार का शरीर मिला है।"

इस प्रसंग में कोई महानुभाव इस प्रकार का भाव कहते हैं कि श्रीजगन्नाथ जी ने जो कहा था कि "रसिक जयदेव मेरोई स्वरूप जानो" सोभी अपने बर्तमान विग्रह की सदृशता कराके लोक को दिखा के फिर अच्छा कर दिया॥

(८४६) टीका। कवित्त।

बड़ेई प्रभाववान, सकै को बखान ? अहो मेरे कोहु

भूरि भाग, दरशन कीजिये। पालकी बिठाइलिये, किये सब ठूठ नीके, जीके भाए भए "कछु आज्ञा मोहि दीजियै" ॥ "करौ हरि-साधु-सेवा, नाना पकवान मेवा; आवैं जोई सन्त तिन्है देखि देखि भीजियै"। आए वेई ठग, माला तिलक चिलक किये, किलकि कै कहि "बड़े बन्धु लेखि लीजियै" ॥ १५४ ॥ (६२९—४७५)

"मालातिलक चिलक किये"=कण्ठी माला तिलक आदि सन्त भेष बनाए। "भीजियै"=प्रेमाश्रुयुक्त; प्रेम रस में भीगा।

वार्त्तिक तिलक।

श्रीजयदेव जी के इस प्रकार गंभीर वचन सुनके राजा अपने मन में बिचारने लगा कि "येतो कोई बड़े ही प्रभावयुक्त अकथनीय महानुभाव हैं; मेरे कोई बड़े भाग्य उदय हुए कि मैंने इन के दर्शन पाए"। ऐसा बिचार कर आपको पालकी पर बिठा के अपने घर में लिवा लाया और कटे हुए हाथपगों के ठूठों को औषधि से अच्छा कराया।

फिर, आप के पास आ, प्रणाम कर, राजा बोला कि "हे स्वामी जी! यह आपका आगमन और हाथ पग का अच्छा हो जाना अति उत्तम हुवा परन्तु अब मुझको कुछ हितोपदेश तथा आज्ञा दीजिए"। राजा के विनय सुन श्रीजयदेव जी ने आज्ञा दी कि "दिव्य मन्दिर बनवा के श्रीभगवान की मूर्त्ति पधराओ, और

नित्य सेवा पूजा मेवा मिठाई भोग अर्पण करो, तथा प्रभु के आगे सन्तशाला बनवा के उसमें अति प्रेम से साधु सेवा करो। और, जो सन्त आवैं तिनका दर्शन करके प्रेमरस में भींजि जाया करो"।

आपकी आज्ञा मस्तक पर धारणकर राजा इसी प्रकार करने लगा॥

तन, मन, धन, अर्पण पूर्वक राजाकृत सन्तसेवा सुनके, वे सब ठग भी चमाचम-तिलक तथा माला धारण कर साधुवेष बना के आए। श्रीजयदेव जी उन सबों को देखतेही अति प्रीतिहर्षाकुल होके बोले कि "आइए २" और समीप के लोगों से कहने लगे कि "ये सब मेरे बड़े गुरुभाई हैं। इन को दर्शन और प्रणाम करो"॥

(१०९/८४२) टीका। कवित्त।

नृपति बुलाइ कही हिये हरि भाय भरे, "ढरे तेरे भाग, अब सेवा फल लीजियै।" गयो लै महल मांझ टहल लगाए लोग, लागे होन भोग; जिय शंका तन छीजियै॥ मांगैं बारबार बिदा; राजा नहीं जान देत; अति अकुलाये, कही स्वामी "धन दीजियै"। दैकैं बहु-भांति सो, पठाए संग मानस हूं, "आवौ पहुँचाय तब तुम पर रीझियै"॥ १५५॥ (६२९—४७४)

पाठान्तर "अकुलाए"। अति त्वरा को, अति शीघ्रता चाही।

"मानुस हू"=मनुज हूं, मनुष्य भी। "ढरे"=आए हैं, पधारे हैं।

श्रीजयदेव जी ने राजा को बुलवा के कहा कि "हे राजा! श्रीभगवत के प्रेमभाव से भरे हुए हृदय वाले ये सन्त तुम्हारे भाग्यवस आज पधारे हैं, आज तक तुमने जितनी सन्तसेवा की है तिसका फल अब इन की सेवा करके लो।"

आप की आज्ञा मान राजा ने अतिहर्ष से उन को लेजा कर अपने राजभवन में सबों का आसन निवास दिया; और बहुत मनुष्यौं को सेवा टहल में लगा दिया। नित्य नवीन भोग पदार्थ अर्पण करने लगा। तथापि, वे दुष्ट तो अतिही अपराधी थे; इस्से जी में यह शंका हो रही थी कि "जयदेव जी हम सबों को मरवाही डालेंगे"। अतएव सबों का शरीर सूखा जाता था। वे ठग बारंबार बिदा मांगते परंतु भक्त राजा नहीं जाने देता; जब ठग लोग अतिही अकुला गए, बड़ी शीघ्रता मँचाई, तब श्रीजयदेवजी ने उन की शंका जानकर राजा को आज्ञा दी कि "ये सन्त हैं, रजोगुणी के हां इतनाही बहुत रहे, अब धन बस्त्रादिक देके बिदा कर दो।"

आप की आज्ञा सुन राजा ने रत्न सुबर्ण मुद्रादि बहुत प्रकार का धन दे के बिदा किया, और वह धन ले जाने रक्षा करने के लिये बहुत से मनुष्य साथकर

उन से कहा कि "अच्छे प्रकार सन्तों को पहुँचाकर आवोगे तब तुम लोगों पर मैं अतिही प्रसन्न होकर बहुत द्रव्य दूंगा" ॥

(२००/८३२) टीका। कवित्त।

पूछैं नृप-नर "कोऊ तुम्हरी न सरवर, जिते आए साधु ऐसी सेवा नहीं भई है। स्वामी जू सौं नातौ कहा? कहौ हम खांइ हहा;" "राखियो दुराइ, यह बात अति नई है॥ हुते एक ठौर नृप चाकरी मैं, तहां इन कियोई बिगार 'मारिडारौ' आज्ञा दई है। राखे हम हितू जानि, लै निदान हांथ पावँ, वाही के इसान अब हम भरिलई है" ॥१५६॥ (६२९—४७३)

"सरवर"=तुल्यता। "इसान"=इह्सान्, उपकार, भलाई।

वार्तिक तिलक।

इस प्रकार जब चल के मार्ग में आए तब राजा के सेवक लोग उन से पूछने लगे कि "महाराज! आप सबों के समान कोई महात्मा नहीं हैं; क्योंकि यहां जितने सन्त आए हैं उनमें किसी की भी ऐसी सेवा नहीं हुई; आप कृपा करके कहिए हम लोग अति बिनय करके हाहा खाते हैं स्वामी जी से और आप सबों से क्या नाता सम्बंध है?" यह सुन दुष्ट बोले कि "हम कहते तो हैं परन्तु यह बात बहुत नवीन (आश्चर्य्यमय) है, इससे छिपा रखना, कहीं कहना नहीं। प्रथम हम लोग और ये स्वामी जी एकही राजा के चाकर थे;

वहां इनने बहुत ही बुरा काम किया था; राजा ने आज्ञा दी कि 'इसको मारडालो' तब हम लोगों ने अपना हितू जान के इन के प्राण की रक्षा की, केवल हाथ पग काट के राजा को दिखा दिये थे। उसी उपकार के पलटे में अब हम ने यह सेवा सतकार धन सब ले लिया है" ॥

(२०१/८४२) टीका। कवित्त।

फाटि गई भूमि, सबठग वै समाइ गए, भए ये चकित दौरि स्वामी जू पै आए हैं। कही जिती बात सुनि गात गात कांपि उठे, हांथ पांव मीडैं भए ज्यों के त्यों सुहाए हैं॥ अचिरज दोऊ नृपपास जा प्रकाश किये जिए एक सुनि आए वाहीठौर धाए हैं। पूछैं बारबार सीस पांयनि पै धारि रहे कहिए उघारि कैसे मेरे मन भाए हैं॥ १५७ ॥ (६२९—४७२)

"उघारि"=प्रगट कर, खोलके।

वार्तिक तिलक।

श्रीजयदेव जी ने इस प्रकार की क्षमा साधुता की; परन्तु दुष्टों के चित्त में एक भी न चढ़ी, उलटे निन्दा युक्तही बचन कहे; इस्से यद्यपि श्री भूमि जी का "सर्वंसहा" नाम है तथापि इन सन्तद्रोहियों की न सहि सकीं; जितने में ठग थे उतनी भूमि फट गई! दुष्ट रसातल को चले गए!!

राजा के मनुष्य देख के अतिचकित हुए और दौड़ के स्वामी जी के समीप आ संपूर्ण बृन्तांत कह सुनाया। सुन के श्रीजयदेव जी सर्वाङ्ग कंपित होकर हाथ पग मीडने लगे। मीडतेही आपके कर तथा चरण सुन्दर ज्यों के त्यों निकल आए।

दुष्टों का भूमि में समाजाना तथा आप के हस्त पद ज्यों के त्यों हो जाना, ये दोनों आश्चर्य्य देख राजा के सेवक जनों ने राजा को आ सुनाया; आप के हाथ पगों का यथार्थ हो जाना सुन कर नृप ऐसा प्रसन्न हुआ कि जैसा मरणप्राय पुरुष अमृत पी के जी उठै, और दौड़कर श्री जयदेव जी के पास आके चरणों में सीस धर बारंबार पूछने लगा कि "हे महाराज! मेरे मन भावते आप के ये हस्त पद कैसे अच्छे हो गए? और वे लोग भूमि में क्यों समा गए? इस आश्चर्य्य चरित्र का मर्म खोल के कहिए कृपा करके"॥

(२०२/८४३) टीका। कवित।

राजा अति आरि गही, कही सब बात खोलि, निपट अमोल यह सन्तन को बेस है। कैसौ अपकार करैं तऊ उपकार करैं ढरैं रीति आपनी ही सरस सुदेस है॥ साधुता न तजै कभूं जैसे दुष्ट दुष्टता न, यही जानि लीजै मिले रसिक नरेस है। जान्यो जब नांव ठांव

"रहो इहां बलि जांव भयो मैं सनाथ, प्रेम भक्ति भई देस है" ॥ १५८ ॥ (६२९-४७१)

"अरि"=हठ। "खोलि" = स्पष्ट करके, गुप्त न रख के, प्रगट।

वार्तिक तिलक।

जब राजा ने, श्रीजयदेव जी के चरणों में सिर धर के, अति ही हठ ग्रहण करके, पूछा तब आप, अपना नाम ग्राम, तथा ठगों की करनी सब वार्त्ता यथार्थ कहकर, हितोपदेश करने लगे कि "राजन्! वे ठग अत्यन्त अयोग्य सन्तों का वेष बना के आए, इसी से मैंने उनका अतिशय सतकार कराया; भगवद्भक्त को ऐसा ही उचित है, कि कोई कैसेहू अपकार करे तब भी उसका उपकारही करें, अपनी सरस सुदेश रीति ही से चलें, कभी साधुता को न त्याग करना चाहिए जैसे दुष्ट अपनी दुष्टता कभी नहीं त्याग करता; यह निश्चय जान लो कि इसी प्रकार की साधुता से प्रभु-रसिकनरेश मिलते हैं" ॥

ज़ब श्रीजयदेव जी के कहने से राजा ने जाना कि किन्दुविल्ववासी श्रीगीतगोविन्द काव्य के कर्त्ता आप ही हैं, तब तो अति ही प्रेम भाव में भर के प्रार्थना करने लगा कि "हे प्रभो! मैं आप के ऊपर न्योछावर होता हूं; अब आप श्री पद्मावती जी सहित यहां ही रहिए; मैं सनाथ होऊं; जबसे आप विराजे तब से इस नगर तथा देश में भगवद्भक्ति उत्पन्न हुई; अब उसको बढ़ाइये, और मुझ पर कृपा कीजिये ॥"

(२०३ / ८४३) टीका । कवित्त ।

गयी जा लिवाय ल्याय कबिराज-राज तिया; किया लै मिलाप आप रानी ढिग आइ है। मर्यो एक भाई वाकौ, भई यों भौजाई सती, कोऊ अङ्ग काटि, कोऊ कूदि परी धाइ है॥ सुनतही नृपबधू निपट अचंभौ भयो इनकैं न भयो फिरि कही समुझाइ है। "प्रीति की न रीति यह बड़ी विपरीति अहो छुटै तन जबै प्रिया प्रान छूटि जाइ है"॥ १५९॥ (६२९—४७०)

वार्तिक तिलक।

राजा ने अपनी प्रार्थना श्रीजयदेव जी को अङ्गीकार कराकर किन्दुविल्व से सादर श्रीपद्मावती जी को लाके दोनों मूर्त्ति का मिलाप करा दिया; और भक्तराजा की रानी भी श्रीपद्मावती जी के दर्शन सतसङ्ग को आया करती थी। एक दिवस कविराज-कान्ता जी के पास रानी बैठी थी उसी समय किसी किंकरी ने सुनाया कि "आप के भाई का शरीर छूट गया; सो आपकी भौजाइयाँ कोई सती होगईं, कोई शस्त्र से अंग काट के मर गईं, कोई दौड़कर चित्ता में कूद पड़ीं।" रानी यह सुन, उन सबों के प्रीति पातिव्रत का परम आश्चर्य्य मान, विस्मित हुई; पर श्री पद्मावती जी ने इस बात का कुछ आश्चर्य्य न किया; किन्तु रानी को समझाकर कहने लगीं कि "यह प्रीति

की रीति नहीं है, शस्त्र से मर जाना, जर जाना, बड़ी विपरीति गति है; प्रीति की रीति तो यह है कि प्रिय पति का शरीर छूटते ही प्रिया के प्राण छूट जायं"॥

(३०४/८४२) टीका। कबित्त।

"ऐसी एक आप" कहि, राजा सुँ युँ बात कही "लैकैं जाओ बाग स्वामी नेकु, देखौं प्रीति कों"। "निपट बिचारी बुरी, देत मेरे गरे छुरी," तिया-हठ मानि करी वैसेही प्रतीति कों॥ आनि कहे "आप पाय" कही यही भांति आय, बैठी ढिग तिया देखि लोटिगई रीति कों। बोली "भक्तबधू अजू! वे तो हैं बहुत नीके, तुम कहा औचक हीं पावतिहौ भीति कों" ॥ १६० ॥ (६२९–४६९)

"आप पाय"=आप ने श्री हरिधाम पाया। "औचक हीं"=अचानक, धोखे में। "सुँ"=से। "युँ"=यों, इस भांति।

वार्तिक तिलक।

श्रीपद्मावती जी के वचन सुनके भक्त राजा की स्त्री बोल उठी कि "ऐसी प्रेममूर्त्ति तो जगत में एक आप ही हो" ऐसा कहके, फिर उसने राजा से जाके सब वार्ता कही; और साथही यह बात भी, आग्रह पूर्वक, कही, कि "आप स्वामी जी को वाटिका में तनक लेके जाइये, तो मैं भला इनकी प्रीति देखूं तो"। भक्त राजा ने उत्तर दिया कि "तूने ऐसा विचार बहुतही बुरा किया है, तू मेरा गला ही काटा चाहती है"।

कुसंग से कहां हानि नहीं हुई? दुष्टा रानी के हठ आग्रह बस उसके बचन में प्रतीति करके, राजा ने वैसाही किया। उस त्रिया ने एक टहलनी को सिखा रक्खा था; जब वह श्रीपद्मावती जी के पास बैठी हुई थी, उसी क्षण वह लौंडी आकर सिखाई बनाई दुख-की-रीति से बोली कि "स्वामी जी तो वैकुण्ठ धाम पागए"; यह सुन राजा की स्त्री रोरो कर कुरीति से भूमि में लोट गई।

पर, श्रीजयदेवप्रिया जी ने कहा कि "हे भक्तबधू! तुम व्यर्थही धोखे में पड़ती और भयभीत होती हो, श्री स्वामी जू महाराज तो बहुत अच्छे बिराज रहे हैं"॥

(२०५) टीका। कवित्त।

भई लाज भारी, पुनि फेरिकै सँवारी दिन बीति गए कोऊ, जब तब वही कीनी है। जानि गई 'भक्त बधू चाहति परीछा लियो,' कही "अजू पाए"; सुनि तजी देह भीनी है॥ भयौ मुख स्वेत रानी; राजा आए जानी यह, रची चिता "जरौं, मति भई मेरी हीनी है"। भई सुधि आप कौं, सु आए बेगि दौरि इहां; देखि मृत्यु प्राय नृप, कह्यौ "मेरी दीनी है" ॥१६१॥(६२१५६८)

वार्तिक तिलक।

जब श्रीपद्मावती जी इस झुठाई को जान गईं; तब तो रानी के मन में बड़ी भारी लज्जा हुई; परन्तु उस दुर्मति को छोड़ा नहीं, कुछ दिन बीते फिर पूर्ववत कपट

का ठाट रच कर वैसेही किया । तब श्रीपद्मावती जी जान गईं कि "यह मेरी परीक्षा लिया चाहती है"। इससे, जब उसके मुख से सुना कि "स्वामी जी श्री-हरि धाम को प्राप्त हुए," उसी क्षण स्नेह से भीजी हुई निज देह त्याग दी ॥ श्रीपद्मावती जी की यह अलौकिक स्वच्छन्द-मृत्यु देख, रानी का मुख स्वेत हो गया; और राजा आके यह चरित्र सुन देख बोले कि "मेरी मति नष्ट हो गई इस स्त्री के संग से, इससे मैं जल जाऊंगा," और चिता रचा कर जलाही चाहता था ॥ यह वार्ता श्रीजयदेव जी सुनतेही दौड़े आए राजा को देखा कि शोक से मृत्युप्राय हो रहा है। आप का दर्शन कर कहने लगा कि "स्वामी जी ! मेरीही दी हुई मृत्यु से माता जी मरी हैं" !!!

(२०६/८४१) टीका । कवित्त ।

बोल्यो नृप "अजू मोहि जरेई बनत अब, सब उपदेश लैके धूरि मैं मिलायो है"। कह्यो बहु भांति ऐपै आवति न शान्ति किहूं; गाई अष्टपदी, सुर दियो, तन ज्यायो है ॥ लाजनि को मार्यो राजा चाहै अप-घात कियो, जियो नहीं जात, "भक्ति लेसहूं न आयो है"। करि समाधान, निज ग्राम आए "किन्दु बिल्लु," जैसो कछु सुन्यों यह परचै लै गायो है ॥

वार्तिक तिलक ।

श्रीजयदेव जी ने राजा को निषेध किया कि "तुम

जरो मरो मत;" तब राजा बोला कि "अजी महाराज! मुझे अब जले बिना नहीं बनता क्योंकि आप का समस्त उपदेश लेके मैंने धूल में मिला दिया"। यह सुन श्रीजयदेव जी ने बहुत प्रकार से समझाया तथापि राजा के हृदय में किसी प्रकार शान्ति नहीं ही आई; तब आपने जाना कि 'बिना इनके जिवाए राजा नहीं जीवेगा;' इससे आप ने संजीवन मंत्र सम गीतगोबिन्द की अष्टपदी गानकर, शरीर में स्वर भर दिया; सुनतेही श्रीपद्मावती जी उठके साथ में आप भी गान करने लगीं। यह चरित्र देख के सब "जयजयकार" करने लगे॥

इस प्रकार आप ने अपनी भक्तिभाग्यवती को जिला दिया; तथापि लज्जा के मारे राजा को अपना जीना भला न लगता था, ग्लानि से ऐसा विचारता कि "हाय; मेरे मन में भक्ति का लेश भी न आया;" इससे आत्मघात किया चाहता था, तब श्रीजयदेव जी ने बहुत प्रकार उपदेश देकर उसको सावधान किया; और आप अपने किन्दुबिल्व ग्राम को चले आए।

श्रीनाभास्वामी जी के छप्पै से उपरान्त, श्रीजयदेव जी के ये परचै चरित्र चमत्कार जिस प्रकार वृद्ध लोगों से सुना था, तिस भाँति गान किया॥

(२०७/८४२) टीका। कवित्त।

देवधुनी सोत हो अठारै कोश आश्रम तें; सदाई

अस्नान करैं, धरैं जोग्यताई कौं। भयो तन वृद्ध, तऊ छोड़ैं नहीं नित्य नेम, प्रेम देखि भारी निशि कही सुखदाई कौं॥ "आवो जिनि ध्यान करौ, करौ मत हठ ऐसो" मानी नहीं "आऊँ मैं हीं;" "जानौं कैसे आई कौं"? । "फूले देखौ कंज तब कीजियो प्रतीति मेरी;" भई वही भांति, सेवैं अबलौ सुहाई कौं॥ १६३॥ (६२९-४६६)

"देवधुनि"=देवसरिता, श्रीगङ्गा जी। "सोत"=स्रोत, धारा। "हो"=थी, रही॥

वार्तिक तिलक।

श्रीजयदेव जी राजा के यहां से आए। श्रीगङ्गा जी की धारा आप के आश्रम से अठारह कोश थी, परन्तु आप श्री प्रभु कृपा से योगसिद्धि बेग से गमन कर, नित्य ही श्रीगङ्गा स्नान करते थे। जब आप का शरीर वृद्ध हो गया तब भी नित्य स्नान का नेम नहीं छोड़ा। ऐसा भारी प्रेम नेम देख, श्रीगङ्गा जी को दया लगी; क्योंकि यद्यपि योगावेश से जाते आते थे तौ भी शरीर को परिश्रम होता ही था; इससे श्रीगङ्गा जी ने निज सुखदाता श्रीजयदेव जी को रात्रि में आज्ञा दी कि "अब वृद्ध शरीर से नित्य स्नान को मत आवो, इस हठ को छोड़कर ध्यान ही से मेरा स्नान कर लिया करो।" परन्तु आप ने बात मानी नहीं; आतेही थे; तब श्रीगङ्गा जी ने कृपा कर कहा कि "तुम्हारे आश्रम के निकट की नदी में ही मैं आ-

ऊंगी इसी में स्नान किया करो" । आप ने पूछा कि "मैं कैसे जानूं कि आप आई हो ?" श्री गङ्गा जी ने कहा कि "देखो इस में कमल नहीं हैं; अब जब सुन्दर कमल फूले देखना तब मेरे आ जाने की प्रतीति करना।" दूसरे दिवस देखैं तो दिव्य कमल फूले हैं, जल भी दिव्य गङ्गा जल के तुल्य अमल मिष्ट हो गया; तब श्रीजयदेव जी ने जीवनावधि उसी में स्नान और पान किया। अभी तक किन्दुविल्व ग्राम में अति सुहाई "जयदेई-गङ्गा" नाम से प्रसिद्ध हैं। सज्जन लोग श्री गङ्गा तुल्य मानकर सेवन स्नान पान करते हैं॥

मुन्शी तपस्वीराम जी सीतारामीय ने श्रीजयदेव जी की माता का नाम "श्रीराधा देवी" जी लिखा है, और श्री राधाकृष्ण दास जी की 'भक्तनामावली' (काशी नागरी प्रचारिणी सभा) में "रामादेवी" है। इनका समय "सन् १०२५ ई० से १०५० ईसवी तक' निर्णय किया गया है, अर्थात् विक्रमी सम्वत १०८२ तथा ११०७ के मध्य॥ इनका ग्राम किन्दुविल्व, बंङ्गाल देश में बीरभूम से प्रायः दस कोस दक्षिण की ओर अजयनद के उत्तर था॥

(दोहा) प्रगट भयो जयदेव मुख, अद्भुत गीतगुविन्द।
कह्यो 'महा शृङ्गार रस,' सहित प्रेम मकरन्द॥
(श्रीध्रुवदास जी)

श्रीपद्मावती जी।

श्री आज्ञा से जब पिता ने आप को श्रीजयदेव जी के पास छोड़ दिया, तब श्रीपद्मावती जी ने अपने को आपकी दासी जानकर पातिव्रत उसी समय से धारण किया, और श्री जयदेव जी के और और प्रकार से समझाने पर भी आप की ही सेवा में दृढ़ रहीं। जब श्रीकविराजराजेश्वर जी स्नान को गए प्रभु ने आप उनके रूप में आकर श्रीपद्मावती जी को दर्शन दिये, तब इनके हाथ का भोजन सराह सराह के पाया; और वह पद पोथी में (पृष्ठ ५०८) लिख कर चल दिये; धन्य धन्य श्रीपद्मावती जी। जब दुष्टा रानी (भक्तवधू) ने पुनः पुनः परीक्षा ली (पृष्ठ ५२८) आप ने शरीर छोड़ ही दिया था। आप की प्रशंसा कहां तक की जा सके॥ "पद्मावति जयदेव प्रेम बस कीने मोहन" ॥ (श्री ध्रुवदास जी)

($\frac{२}{४}\frac{०}{४}\frac{६}{२}$) छप्पै।

श्रीधर श्री भागौत में, परम-धरम नि-रनै कियौ॥ तीन-कांड एकत्व सानि, कोउ अज्ञ बखानत। कर्मठ ज्ञानी ऐंचि अर्थ को अनरथ बानत॥ 'परमहंस-

संहिता' बिदित टीका बिसतार्यो। षट-शास्त्रनि अबिरुद्ध बेदसंमतहिँ बिचार्यो॥ "परमानन्द" प्रसाद तें, माधौ सुकर सु-धार-दियौ। श्रीधर श्रीभागौत में, परम धरम निरनै कियौ॥ ४४०॥ ($\frac{४५}{२१३}$)

*"बानत"=बर्णत। जैसे, कनक हि बान चढ़ै जिमि दाहे। अर्थात् जैसे दाहेते कनक में बर्ण चढ़ै। पुनः जैसे, गाजत अर्थात् गर्जत। ☞ "ठानत" पाठ, नवीन कल्पित है॥

वार्तिक तिलक।

श्री श्रीधर स्वामी।

श्री श्रीधरजी ने श्रीभागवत ग्रंथ बिषे परम-धर्म (श्रीभगवद्धर्म) का यथार्थ निर्णय किया अर्थात् श्री-व्यास जी और श्रीशुकजी ने जिस ठिकाने जो भागवद्धर्म जिस महत्व तथा जिस आशय से कथन किया था वहां वैसाही स्पष्ट अर्थ करके दिखा दिया॥ और अन्य टीका (अर्थ) करने वालों ने यथार्थ नहीं कहा। कोई लोग कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड, ज्ञान काण्ड, इन तीनों काण्डों को एकही में सान (मिला) के अर्थ बखानते हैं, "क्योंकि वे अज्ञानी हैं," तीनों का स्वरूप ही नहीं जानते। और पूर्व-मीमांसासक्त कर्मठ अर्थात् कर्मकाण्डी तथा उत्तर-मीमांसासक्त (वेदान्ती ज्ञानी, जन इस भक्ति ग्रंथ भागवत को, कर्म ज्ञान को दिशि खींचके

अर्थ को अनर्थ करके बर्णते हैं। और श्री श्रीधरानन्द जी ने जैसा " पारमहंस-संहिता" यह बिख्यात ग्रन्थ है, वैसाही परमहंसप्रीतिबर्द्धिनी टीका बिस्तारकर बर्णन किया कि जिसमें मीमांसा, बेदान्त, योग, सांख्य, न्याय, वैशेषिक, इन छहूं शास्त्रों के अविरुद्ध बेद के संमत बिचार पूर्बक बखान किया। उस "श्रीमद्भागवत भावार्थ दीपिका" नामक टीका के प्रारंभ का मङ्गलाचरण यह है "नमः परमहंसास्वादितचरण कमलचिन्मकरन्दाय भक्तजनमानसनिवासाय श्रीरामचन्द्राय"॥ सो इस प्रकार की टीका रचना आप को योग्य ही है, क्योंकि आप के ऊपर गुरु स्वामी "श्रीपरमानन्द" जी ने अति प्रसन्न होकर कृपा की। इसी हेतु से उस टीका को श्रीविन्दुमाधवजी ने स्वयं श्रीकरकमलों से सुधार दिया अर्थात् सर्बोपरि सर्ब टीकाओं की शिरोमणि बनाकर स्वीकार किया॥

(दोहा) "श्रीधरस्वामी तो मनौ, श्रीधर प्रगटे आन। तिलक भागवत को कियो, सब तिलकन परमान॥ १॥ (श्रीध्रुवदास जी)

[२०१/८४२] टीका। कवित्त।

पंडित समाज बड़े बड़े भक्तराज जिते, भागवत टीका करि आपस मै रीझियै। भयो जू बिचार काशी पुरी अविनाशी मांझ, सभा अनुसार जोई सोई लिखि

दीजियै ॥ ताको तो प्रमान भगवान "बिन्दुमाधौ जी" हैं, साधौ यही बात धरि मन्दिर मै लीजियै। धरे सब जाय, प्रभु सुकर बनाय दियो, कियो सर्ब-ऊपर लै, चल्यो मति धीजियै ॥ १६४ ॥ (६२९—४६५)

वार्त्तिक तिलक।

जिस समय श्रीश्रीधर स्वामी जी ने "श्रीभागवत" पर टीका रची, उस समय और बड़े बड़े पंडित भक्तों ने भी इस ग्रन्थ की टीकाएं कीं; और सब के सब अपनी अपनी टीका अन्य टीकाओं से श्रेष्ठ कह कर निज निज मति पर रीझ कर आपस में विवाद करते थे।

फिर सब का संमत विचार होकर, प्रलय काल* में भी अविनाशिनी ऐसी श्री काशीपुरी के मध्य इकट्ठे होकर, सब टीकाओं के टीकाकारों ने सभा की कि 'इस सभा के मतानुसार जो टीका उत्तम मध्यम जैसी हो तैसी लिख दीजै। निदान अन्तिम सिद्धान्त यह हुआ कि "इस में महा पंच-पंडित भगवान् श्रीबिन्दुमाधव जी हैं, जो टीका आप अङ्गीकार कर सर्बोपरि करैं सोई प्रमाण है। अब टीका की श्रेष्ठता जानने के हेतु यही बात साधैं, प्रथम सब टीका मंदिर में रख कर फिर लेलेवैं"। ऐसाही किया; मध्यान्ह भोग के पश्चात् प्रभु के आगे सब टीकाएं धर मंदिर के किवाड़ दे, दो मुहूर्त में खोला; तो देखते क्या हैं कि —

"स्वामी श्रीधर जी कृत टीका" श्रीबिन्दु माधवजी निज करकमलों से सब टीकाओं के ऊपर धर कर, ब्रह्मा के भाल में भाग्य लिखने वाले हस्त कंज से उस पर लिख दिया कि "श्री भागवत पर श्रीधरी टीका सर्वोपरि है"। इस प्रकार आपने अङ्गीकार करके सुधार दिया॥ इसी से श्री श्रीधर जी की टीका चली (फैली) और उस पर सब सज्जनों की मति प्रसन्न हुई॥

श्रीपरमानन्द जी।

स्वामी श्रीपरमानन्द जी श्रीश्रीधरस्वामी के गुरु सन्यासी हैं "परमानन्द प्रसादतें"।

"श्री परमानन्द जी †" सुकवि, भजन प्रवीन, शान्त, श्री वृन्दाबन के सन्यासी सर्वस्व त्यागी थे॥

* "मंगल की राशि परमारथ की खानि काशी विरचि बनाई विधि केशव बसाई है"॥ "प्रलयहूं काल राखी शूलपाणि शूलपर"॥
(प्रमाण कवित्त श्री गोस्वामी कृत॥)

"मतिधीजिए"=मति प्रसन्न हुई।

† और भी कई परमानन्द जी हुए हैं। जिनमेंसे, डाक्टर् ग्रियर्सन् साहिब् (Dr. G. A. Grierson) ने अष्टछापवाले की, और श्रीराधाकृष्णदास जी ने चार की चरचा की है॥

॥ श्रीः ॥

श्रीबिल्वमङ्गल जी।

(२१०/८४२) छप्पय।

कृष्णकृपा को पर प्रगट, "बिल्व मंगल" मङ्गल स्वरूप॥ "करुणामृत" सु कवित्त युक्ति अनुच्छिष्ट उचारी। रसिक जनन जीवन जु हृदय हारावलि धारी॥ हरि पकरायो हाथ बहुरि तहँ लियो छुटाई। "कहा भयो कर छुटे बदौं जो हिय तें जाई"॥ चिन्तामणि सँग पाय कें, ब्रजबधू केलि बरनी अनूप। कृष्णकृपा को पर प्रगट, "बिल्वमङ्गल" मंगल-स्वरूप॥ ४१॥ (४६/२१३)

"पर" = परत्व, सर्वोपरि। "कोपर" = पात्र विशेष, परात। "अनुच्छिष्ट" = उच्छिष्ट नहीं; अमनिया, छाया किसी की नहीं, अनुवाद नहीं।

वार्त्तिक तिलक।

श्रीकृष्ण जी के बड़े कृपापात्र तथा परम मङ्गल के स्वरूप श्री "बिल्वमंगल" जी ने श्री "श्री कृष्ण करुणामृत" नामक ग्रन्थ ऐसा बिरचा है कि जो श्री कृपा को परत्व मंगल स्वरूप है; जिसमें न किसी कवि की छाया ही है न किसी काव्य का अनुवाद है; वह रसिक

जनों का जीवन है; कि जो उसको हारों की नाईं अन्तर हृदय में धारण किये रहते हैं। श्री हरि ने अपना हाथ पकड़ाके और, फिर (उस देशकाल में) छुड़ा भी लिया; तब आपने कहा कि "मेरा कर तो छटकाए जाते हो, परन्तु बदौं तब कि जब मुझ दुर्बल के हृदय में से भी छटक जासको"* । "चिन्तामणि" नाम प्रमदा (वेश्या) के संग से, विषई से विरक्त हो कर आप ने श्री ब्रज बधून की केलि का अनूप वर्णन किया है।

* हस्तमुत्क्षिप्य निर्यासि बलात् कृष्ण! किमद्भुतम् ।
हृदयाद् यदि निर्यासि पौरुषं गणयामि ते ॥
दो० बाँह छुड़ाये जात हौ निबल जानि कै मोहिं ।
हृदय तें जु छुड़ाइहौ मर्द बदौं तब तोहिं ॥

(२११/८४२) टीका । कवित्त ।

"कृष्णवेंना" तीर एक द्विज मतिधीर रहै हूं गयो अधीर संग "चिन्तामणि" पाइकैं। तजी लोकलाज, हिये वाही को जु राज, भयो निशि दिन काज, बहै रहै घर जाइकैं॥ पिता को सराध, नेकु रह्यो मन साधि, दिन शेस मैं आवेश चल्यो अति अकुलाइकैं। नदी चढ़ी रही भारी, पैये न अवारी नाव, भाव भर्यो हियो जियो जात न धिजाइकैं ॥ १६५ ॥ (६२९-४६४)

"अवारी" - अबेर । "धिजाय कैं" प्रेम में भीग के ।

वार्तिक तिलक ।

दक्षिण में "कृष्ण वेणा" नदी के तट पर ब्राह्मण कुल में श्री बिल्वमंगल जी का जन्म था; प्रथम बड़े मति धीर थे

पर चिन्तामणि नाम की एक बेश्यानारी के प्रेम में वह अतिशय आशक्त थे, यहांतक कि लोक कीं लाज धैर्य्य इत्यादि खोके दिन रात उसी के घर, जो उस नदी के दूसरी ओर था, रहा करते; उनके हृदय में उसीका पूरा पूरा राज्य था। एक दिन पिता के श्राद्ध के कारण जैसे तैसे मन मार के दिनभर तो उसी कार्य्य में लगे रहे परन्तु दिन के अन्त में बड़े अधीर होके अकुलाके उसके घर की ओर चले।

सरिता तीर पहुँचे तो देखा कि नदी तो बड़ी चढ़ी हुई है और उस पार जाने की कोई सामा, नाव बेड़ा कुछ नहीं है। अत्यन्त प्रेम भाव में इनका हृदय डूबने लगा।

(२१२/८४२) टीका। कवित्त।

करत विचार वारि धार मैं न रहैं प्राण, तातें भली धारि मित्र सनमुख जाइयैं। परे कूदि नीर, कछु सुधि न शरीर की है, वही एक पीर कब दरसन पाइयैं॥ पैयत न पार, तन हारि भयो बूड़िबे कों, मृतक निहारि, मानी नाव मनभाइयैं। लगेई किनारे जाय, चले पग धाय चाय, आए, पट लागे, निशि आधी सो बिहाइयैं॥ १६६॥ (६२९—४६३)

वार्त्तिक तिलक।

इनने विचार किया कि न प्रियाबिरह धार ही में प्राण बच सकते हैं और न जल धार में ही, इससे यही

भला है कि प्रेमी के सन्मुख ही प्राण देहूं। इतना मन में लाके, नदी में कूदही तो पड़े; शरीर की कुछ सुधि न रही, केवल प्रिया वियोग का दुःख तथा यह उत्कण्ठा रह गई कि कब अपने प्रेमी का दर्शन पाऊं। पैरते पैरते थक के जोंही तन जलमग्न होने पर हुआ, त्योंही अकस्मात् एक मृतक (मुरदा) को देखके समझे कि प्रेमी ही ने मेरे अर्थ नाव भेज दी है। उस्पर चढ़के दैव इच्छा से पार होके तीर लगे। उतर के प्रेमातुर होके दौड़े; जब चिन्तामणि के द्वार पर पहुँचे, रात आधी से कुछ अधिक वीती थी; अतः पट लगे थे॥

(२११/६४२) टीका। कवित्त।

अजगर घूमि झूमि भूमि कों परस कीयो, लियोई सहारो, चढ्यौ छात पर जाय कै। ऊपर किवार लगे, पर्यो कूदि आंगन मैं, गिर्यो, यों गरत राग जागी सोर पायकै। दीपक बराइ, जो पै देखै, बिल्वमंगल है, "बड़ोइ अमंगल, तूं कियो कहा आय कै"। जल अन्हवाय, सूके पट पहिराय, "हाय! कैसैं करि आयो जलपार द्वार धाय कै?" १६७॥ (६३१—४६२)

वार्तिक तिलक

चिन्ता में थेही, कि इतने में एक लटकी हुई वस्तु पर इनकी दृष्टि पड़ी; वह एक अजगर था जो पृथ्वी के पास तक पहुँचके झूल रहा था परन्तु ये अति प्रेमान्ध तो थेही, यह समझे कि प्रेमिन ने मेरेही लिये

रस्सा लटकाय रक्खा है, चटपट आप उसके सहारे से चढ़के छत पर पहुँच गए।

ऊपर किवाड़ लगे देखके ये आंगन में धम से कूद पड़े; धमाके का शब्द सुन इनकी प्रेमी जाग उठी; लोग दीप जलाके उसके प्रकाश में जो देखें तो आप हैं श्रीबिल्वमंगल महाशय जी।

चिन्तामणि झिँझला के बोली कि "हा! तुम बड़े ही अमंगल हो! तुमने आके क्या किया? अस्तु, स्नान करा, सूखे वस्त्र पहिरा, उसने पूछा कि "बताइये तो आप नदी पार हुए क्योंकर और ऊपर चढ़े कैसे?

(२१४/८२४) टीका। कवित्त।

" नवका पठाई, द्वार लाव लटकाई देखि मेरे मन भाई, मैं तो तबै लई जानिकै'। " चलो देखौं अहो यह कहा धौं प्रलाप करै" देख्यौ बिषधर महा, खीजी अपमानि कै॥ " जैसो मन मेरे हाड़ चाम सौं लगायो, तैसो स्याम सौं लगव तो पै जानियें सयानिकै। मैं तो भये भोर भजौं युगल किशोर अब, तेरी तुही जानै चाहौ करौ मन मानि कै "॥१६८॥ (६२९—४६१)

वार्तिक। तिलक।

इनने उत्तर दिया कि मैंने जभी देखा कि तुम ने मेरे लिये नाव भेज दी है और छत से डोरलटका

रक्खा है, तो मैंने तभी तुम्हारी प्रीति और कृपा की बिलक्षणता जान ली। वह बोली कि "ये क्या बड़बड़ाते हैं चलो लोग देखें तो कि डोर कहां और कैसा है?" जा के देखें कि वह बड़ा बिषधर अजगर है।

यह सुन चिन्तामणि झुंझला उठी और अपमान तथा क्रोध पूर्बक कहने लगी कि—"मेरे हाड़ चाम में जैसा अनोखा अनुराग किया, यदि श्यामसुन्दर मुरलीधर, शोभासिन्धु, करुणाकर, में लगाते तो तुह्मारा सयानापन था। अब तो तेरी बात तूही जाने, जो चाहे सो कर, पर मैं तो भोर होतेही श्री युगल सर्कार के भजन में चित्त लगाऊंगी॥"

[२/८ १/४ ५/२] टीका। कवित्त।

खुलि गईं आंखैं अभिलाखैं रूप माधुरी कौं चाखैं रस रंग औ उमंग अंग न्यारि ये। बीन लै बजाइ गाई बिपिन निकुंज क्रीड़ा भयो सुखपुंज जापै कोटि बिषै वारियै॥ बीति गई राति प्रात चले आप आप कों जू हिये वही जाप दृग नीर भरि डारियै। "सोम गिरि" नाम अभिराम गुरु कियो आनि सकै को बखानि लाल भुवन निहारियै॥१६९॥ (६२९—४६०)

वार्तिक तिलक।

श्रीभगवत् कृपा से चिन्तामणि जी के वचनों से श्रीविल्वमङ्गल जी के हृदय की आंखें खुल गईं; श्रीयुगलसर्कार के रूप के माधुर्य्य की अभिलाषा बहुतही बढ़ी, प्रेमरङ्ग में रँग गए; तन मन में अपूर्व विलक्षण उमंग छागया; चिन्तामणि बीणा बजाके श्रीबिहारी जी की वृन्दाबन कुंजकी लीला रूप धाम नाम कीर्तन करने लगी। सुनकर, विल्वमंगल जी ऐसे आनन्द में मग्न हुए कि जिसपर करोड़ों विषय के सुख न्यवछावर करना चाहिये। इसी प्रकार भगवत् कृपा के अनुभव में जब सारी रात्रि बीत गई, तो भोरे दोनों ही ने अपना अपना रस्ता पकड़ा। श्रीरूप हृदय में धरे, और नाम रटते प्रेमाश्रु बहाते चले।

आके, "सोमगिरि" जी को विल्वमंगल जी ने गुरु किया और उनसे उपदेश लिया।

इनके प्रेम का वर्णन किससे हो सके? आप सर्वत्र श्री नन्दलाल जी ही को देखते थे—

"जहँ तहँ देख लली अरु लालहिं॥"

[२१६/८४२] टीका। कवित्त।

रहे सो बरस, रस सागर मगन भये, नये नये चोज के श्लोक पढ़ि जीजियें। चले वृन्दाबन, मन कहै कब देखौं जाइ, आइ मग मांझ एक ठौर मति भीजियें॥

पस्यो बढ़ो सोर दृग कोर कै न चाहै काहू, तहां सर लिया न्हाति, देखि आंखैं रीझियें । लगे वाके पाछे कांछ कांछे की न सुधि कछू, गई घर आछे, रहे द्वार, तन छीजियें ॥ १७० ॥ (६२९-४५९)

"कांछ काछे की"=भागवत वेष धारण किये की।

"चोज"=अनोखा भाव ।

वार्त्तिक तिलक ।

एक वर्ष श्रीगुरु की सेवा में रह के, प्रेमरस सिन्धु में मग्न हुए, कई रसीले रसीले काव्य पढ़े तथा गुरु कृपा से आप भी अनेक भाव भरे श्लोक रचना किये; और जीवन का सुख लिया। फिर श्री वृन्दावन को चले; दर्शन की उत्कण्ठा मन को जैसी विलक्षण है, कही नहीं जा सकती। ऐसी चटपटी हो रही है कि कब देखूं।

मार्ग में एक सरोवर पर आए। आप की श्रीप्रभु प्रेमोन्माद की दशा में मति मग्न हो गई; अश्रुपाता-दिक सात्विक प्रगट हुए। आपकी यह दशा देख के गांव में बड़ी धूम मची; आप किसी की ओर दृष्टि भी नहीं करते थे; केवल प्रभु के रूप की माधुरी में छके थे॥ परन्तु माया के कौतुक से, उसी सर में एक अति रूपवती स्त्री को स्नान करते देख उस मृग-लोचनी के नयन बाण इनकी आंखों में चुभही तो गये, और ऐसा खटकने लगे कि वेष की भी लज्जा

जाती रही; तन मन की सुधि खो, उसके पीछे पीछे लगे, और उसके द्वार पर जा जमे । "देखन को अलि ब्याकुल नयना" ॥ विरह से तन क्षीण होने लगा । वह सुन्दरी अपने घर में चली गई ॥

(२२७/८४५) टीक । कवित्त ।

आयो वाको पति, द्वार देखै भागवत ठाढ़े, बड़ो भागवत; पूछी बधू सों, जनाइयें । कही जू "पधारो पांव धारो गृह पावन कों, पावन पखारौं जल ढारौं सीस भाइयें" ॥ चले भौन मांझ, मन आरति मिटायबे कौं, गायबे कौं* जोई रीति सोई कै बताइयें । नारि सो कह्यो "हो तूं सिंगार करि सेवा कीजै, लीजै यौं सुहाग जामैं बेगि प्रभु पाइयें" ॥१७१॥ (६२९—४५८)

* "गाइबे कौं"=कहने को ।

वार्त्तिक तिलक ।

उस स्त्री का पति कहीं बाहर गया रहा । वह बड़ा हरिभक्त था, घर आके सन्त को द्वार पर खड़े देख, अपने धन्य भाग समझ, दण्डवत कर, आसन दिया । स्त्री से पूछा तब उसने सारी वार्त्ता कह सुनाई ।

उस भक्त ने आप के पास आके कहा कि "आप भीतर पधारिये; मेरे गृह पवित्र होने के हेतु अपने चरण उसमें रखिये । मैं आप के चरण धोके जल सीस पर धारण करके कृतार्थ होऊं" । यह सुन आप उसके साथ घर में जाके अपने मन की आरति मिटाने के लिये जो कहना था सब बात बता दी ।

उसने अपनी पतिव्रता स्त्री को आज्ञा दी कि "तुम शृङ्गार करके महात्मा जी की सेवा करो, इसको परम सुहाग मानकर ऐसी प्रतीति रक्खो कि परम भागवत की निष्कपट सेवा करने से भगवत शीघ्र रीझते मिलते हैं॥"

(२१९/८४२) टीका । कवित्त ।

चली यै सिँगार करि, थार मैं प्रसाद लैकै, ऊंची चित्रसारी, जहां बैठे अनुरागी हैं। झनक मनक जाइ, जोरि कर ठाढ़ी रही, गही मति देखि देखि नून वृत्ति भागी है॥ कही युग सूई ल्यावो, ल्याई, दई, लई हाथ, फोरि डारी आंखैं, अहो बड़ी ये अभागी हैं। गई पतिपास स्वास भरत न बोलि आवै, बोली, दुख पाय आय पांय परे रागी हैं॥ १७२॥(६२९—४५७)

वार्तिक तिलक ।

पति की आज्ञा ही को परम धर्म मान, वह सौभाग्यवती सज धज बन ठन, श्रीभगवतप्रसाद का थार हाथ में ले, उस ठिकाने चली जहां चित्रसारी युक्त ऊंची अटारी पर विल्वमंगल जी उसकी चाह में बिराजते थे; गहनों के शब्द तथा प्रमदाओं के स्वभाविक हावभाव युक्त सुन्दरी आप के आगे पहुँचकर कर जोड़ के खड़ी होगई; अर्थात् विल्वमंगल जी की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगी।

बिल्वमंगलजी की मति जो कामबश बही जाती थी, उसको विवेकसे ये पकड़कर बारम्बार उसका रूप देखने लगे; मुख्य प्रभु कृपा और निष्कपट भक्त तथा

पतिव्रता स्त्री के दर्शन से, इनकी न्यून (विषय) वृत्ति भागी, निर्मल मति प्राप्त हुई; विचार किया कि इन अनर्थों की जड़ येही निगोड़ी आखें हैं। उस सुलक्षणा से कहा कि "दो सूई लादो" वह ले आई; इनने शीघ्रही उन दोनों सूइयों से अपने दोनों नेत्र फोड़ डाले। वह भक्तिवती शोक से श्वांस लेती कांपती डरती अपने पति के पास गई; अतिशय दुःख के साथ टूटे फूटे स्वर से सब वृत्तान्त निवेदन किया; सुनतेही वह अनुरागी भड़भागी भी घबराया हुआ दौड़कर आप के चरणों पर आ गिरा॥

(८२१/४३२) टीका। कवित्त।

"कियो अपराध हम, साधु कौं दुखायें", "अहो बड़े तुम साधु हमनाम साधु धस्यो है"। "रहौ अजू सेवा करौं" "करी तुम सेवा ऐसी जैसी नहीं काहू मांझ, मेरो मन भस्यो है"॥ चले सुख पाइ, दृग भूत से छुटाइ दिये, हिये ही की आंखिन सो अबै काम पस्यो है। बैठे बन मध्य जाइ, भूखे जानि आप आइ भोजन कराइ "चलौ छाया दिन ढस्यौ है"॥ १७३॥ (६२९—४५६)

वार्तिक तिलक।

व्याकुलता से बोला कि "हम दोनों से बड़ा अपराध हुआ; हम से सन्तने दुःख पाया; हम बड़े अभागी हैं!" आस्वासन पूर्वक आपने उत्तर दिया "अहो, तुम वस्तुतः बड़े साधु हो; मैं तो साधु बेषको महा कलंक

लगानेवाला वास्तव में बड़ा असाधु हूं, साधु का तो केवल नाम मात्र मुझे है"। तब भक्तने विनय किया कि "महाराज! आप रहिये, मैं आप की सेवा औषधि करूं"। आपने उत्तर दिया कि "तुमने तो ऐसी सेवा करके मेरा मन हर लिया कि किसीसे ऐसी कहां हो-सकेगी; तुम हरिकृपासे बने रहो, भगवद्भजन तथा सन्तसेवा किया करो"। श्रीबिल्वमंगलजी नेत्र रूपी प्रेतों को अपने शरीर से छुड़ाके, सुख पूर्व्वक श्रीवृन्दाबन को चल खड़े हुए।

अब बाहर की आंखों से तो स्थूल भौतिक वस्तुओं के देखने का काम रहगयाही नहीं, हृदय के नयन से सुखपूर्वक प्रयोजन साधते चलके एक बन के मध्य जा बैठे। श्री बिल्वमंगल जी को भूखे देख, श्री वृन्दाबनबिहारी जी ने स्वयं आकर प्रसाद पवाय के कहा कि "दिन ढर चला, संध्या समीप है, छाए में चलो"॥

(२२०/८४१) टीका। कवित्त।

चले लै गहाई कर, छाया घन तरु तर; चाहत छुटायो हाथ, छोड़ैं कैसे? नीको है। ज्यों ज्यों बल करैं त्यों त्यों तजत न एऊ अरैं, लियोई छुटाइ, गह्यो गाढ़ो, रूप हीको है॥ ऐसेही करत वृन्दाबन घन आइ लियो पियो चाहैं रस, सब जग लाग्यो फीको है। भई उतकंठा भारी, आये श्री बिहारीलाल, मुरली बजाइ के सुकियो भयो जीको है॥१७४॥ (६२९—४५५)

वार्त्तिक तिलक।

श्री प्रभु करुणाकर भक्तबत्सल जी हाथ पकड़ा के आपको एक घने वृक्ष की सुखद छाया के तले बैठा के, अपना कर सरोज आपके हाथ में से छुड़ाने लगे; आप भला कैसे छोड़ना चाहते; क्योंकि वह कर कमल अति प्रिय ब्रह्मस्पर्श सुखद था परन्तु बल कर के छुड़ाके प्रभु अलग होगए। आप बोले "हाथों में से तो निकलेजातेहो, पर यदि मन में से सरकोगे तो देखूंगा। इसी प्रकार प्रभु के सहारे से वृन्दावन में आकर श्री वृन्दावन के कुंज में जमके रहे; संसार फीका लगने लगा; सब ओर से चित की वृत्ति इकट्ठी कर के श्री कृपासे भगवत का प्रेम रस पीना चाहा।

"सब के ममता ताग बटोरी।
ममपद मनहिँ बांध बट डोरी"॥

युगल सर्कार के दर्शन की उत्कण्ठा प्रबल हुई।

"राम चरण पंकज जब देखौं।
तब यह जन्म सफल करि लेखौं"।

श्री बिहारी जी कृपा करके आए। बंशी की मीठी तान सुनाई; इनके हृदय का भावता मनोरथ पूर्ण किया॥

(२२१/६४६) टीका। कवित्त

खुलि गए नैन ज्यौं कमल रबि उदै भए, देखि रूप रासि बाढ़ी कोटि गुनि प्यास है। मुरली मधुर सुर राख्यो मद भरि मानो ढरि आयो कानन मैं, आनन मैं

भास है ॥ मानिकै प्रताप चिंतामनि मन मांझ भई, "चिंतामनि जैति" आदि बोले रसरास है। "करुनामृत" ग्रंथ, हृदै ग्रंथि कौं बिदारि डारै, बांधै रस ग्रंथ पन्थ युगल प्रकास है ॥१७५॥ (६२९—४५४)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीबिहारीजीने आके मुरली बजाई; उसकी तान सुन, आपने जाना कि यह तो बिहारी लाल के मुख की ही बंशी है; इससे स्वरूप माधुरी देखने की अभिलाषा हुई।

तब जैसे सूर्य्योदय से कमल खिल जाते हैं, वैसेही आप के नयन खुलगए। सामने करुणासागर शोभाराशि भगवान् के दर्शन प्राप्त हर्ष से फूले, आनन्द हृदय में अँटता नहीं था, दर्शन से भला कब तृप्ति होती है? छबिसमुद्र का मुखचन्द्र देखते रहने की प्यास कोटिगुण अधिक बढ़ती चली।

श्री वंशी का वह मधुर स्वर सुनकर आनन्द मग्न हो गए, उस श्रवणामृत ने इनके कानों में पहुंच कर इनको मतवाला कर दिया; मुरली ध्वनि की गूंज सदा बनीही रही; और मुखारबिन्द के प्रकाश का कहनाही क्या है।

आपने चिन्तामणि के उपदेश का प्रताप जान, मन में गुरु तुल्य मान, "जयति चिन्तामणि" आदि शब्द, उच्चारण किये; रसराशि शृङ्गार ग्रन्थ में, जिसका नाम 'श्रीकृष्ण करुणामृत' है, और जो जीव मात्र की हृदय

ग्रन्थि के खोलने के लिये अति अपूर्व है; ऐसी चमत्कृति दिखाई है, कि वह ग्रन्थ श्रीयुगलसर्कार (प्रियाप्रियतम) के रूपमाधुरी प्रेमरसमें गांठ बांधदेता है: तथा प्रभुकी प्राप्ति के सुन्दर मार्ग का प्रकाशक ही है।

(२२२/८४२) टीका। कवित्त।

चिन्तामनि सुनी "बन मांझ, रूप देख्यो लाल," ह्वै-गई निहाल, आई नेह नातो जानि कैं। उठि बहु मान कियो, दियो दूध भात दोना, "दै पठावैं नित हरि हितू जन मानि कैं"॥ लियो कैसें जाइ, "तुम्हैं भाय सों दियो जो प्रभु, लैहौं नाथ हाथ सौं जो देहैं सनमानि-कैं"। बैठे दोऊ जन, कोऊ पावै नहीं एक कन, रीझे श्याम-घन, दोनो दूसरो हूं आनि कैं॥१७६॥ (६२९—४५३)

वार्त्तिक तिलक।

चिन्तामणि जी को यह बिदित हुआ कि "श्री बिल्व मंगल पर बिशेष कृपा श्री युगल सर्कार की हुई; और श्री ब्रजचन्द्र महाराज के दर्शन पाए हैं"। वह अति हर्ष को प्राप्त हुई, निहाल हो गई, पिछला नेह नाता सुरति कर अनेक मनोरथ करती वह भी श्री बृन्दावन में आपके पास बड़े भाव से आई। देखतेही आप उठखड़े हुए, बड़े आदर भाव से सत्कार किया; श्री युगल सर्कार (ललीलाल) का प्रसाद दूध भात जो कि प्रभु नित्य ही अपना स्नेही जन मान के भेज दिया करते थे, सो दिया।

इन ने पूछा कि "यह प्रसाद का दोना कहां से कैसे आया किसने दिया?" आपने उत्तर दिया कि "स्वयं भगवत कृपा करके अपने कर कमलों से भेज दिया करते हैं"। यह सुनतेही बोल उठी कि "जब वे कृपा करके आपही अपने हाथों से ही देंगे तो लूंगी;"। अब न आप पावैं न चिन्तामणि पावैं, दोना रक्खा है और दोनों भजन कर रहे हैं।

श्री बिल्वमंगल जी की भक्ति भाव तथा श्री चिन्तामणि जी का सच्चा पन जान के श्री भावबश भगवान् ने दर्शन दे दूध भात का दूसरा दोना भी कृपा किया ही। कृतकृत्य हो दोनों ने धन्यवाद गुणानुवाद पूर्वक मिलके प्रसाद पाया॥ आगे क्या कहूं? प्रेम की जय! प्रेम प्रिय प्रभु की जय!! परम प्रेमियों की जय!!!

श्रीविष्णु पुरी जी।

(१२३/८४२) छप्पै।

कलि जीव जँजाली कारनै, "बिष्णुपुरी" बड़ि निधि सँचो॥ भगवत धर्म उतंग आन धर्म आननन देखा। पीतर पटतर बिगत, निषक ज्यौं कुंदन रेखा॥ कृष्ण-कृपा कहि बेलि फलित सतसंग दिखायो। कोटि ग्रंथ को अर्थ, तेरह बिरंचन में

गायो॥ महा समुद्र भागौत तें, "भक्ति-रतन-राजी" रची। कलि जीव जँजाली कारनै, "बिष्णु पुरी" बड़ि निधि सँची ॥४२॥ ($\frac{४७}{२१३}$)

"पीतर"=पीतल। "निकष" = कसौटी (सुनार की)।

"आनन न देखा"=मुंह न देखा। "राजी" = पंक्ति, माला।

"आन धर्म आनन न देखा" = अन्य धर्मों का मुंह भी नहीं देखा।

"आन धर्म आनन देखा"=आन (सपथ) करके आन [अन्य] धर्मों को नहीं देखा। वा, अन्य धर्मों को, अपनी मति में आन के [ला के] देखा भी नहीं।

"पटतर" = सरिस, उपमा। "विरंचन"=लर, माला-की-लड़ियां।

वार्त्तिक तिलक।

श्रीविष्णुपुरी जी ने, कलियुग के जंजाल झंझट में उलझे हुए, भगवतभक्ति सम्पत्तिहीन दरिद्री, जीवों के उपकारार्थ बहुत बड़ा धन (महानिधि) संचय किया।

श्रीभगवत धर्म (नवधा, प्रेमा, परा भक्तियों) को सब धर्मों से ऊंचा जानके वैसाही वर्णन किया; और अन्य धर्मों (वर्ण तथा आश्रम के धर्मों) का मुख भी (आनन) सपथ करके नहीं देखा; किस प्रकार कि जैसे सोनार की कसौटी में पीतल घिसने से उसका रंगरेखा बिगत हो जाता है अर्थात् कसौटी किंचित भी ग्रहण नहीं करती, और कुन्दन सुवर्ण के रंगरेखा अति चमक युक्त उपट आते हैं; इसीप्रकार आपकी मति तथा भक्ति-समें भगवतधर्म चमत्कार युक्त चमकता है।

श्रीकृष्णचन्द्र जी की कृपा रूपिणी बेलि (लता) का फल सत्संग को कह दिखाया ।

उक्तग्रन्थ ("श्रीभक्ति रत्नावली") के तेरह ही बिरंचन(माला की लड़ियें) में करोड़ों ग्रन्थों का तात्पर्य्य संग्रह कर गाया है। श्रीमद् भागवत रूपी महा समुद्र में से निकाल के "भक्तिरत्नावली" भक्ति की माला पानसौ रत्नों (श्लोकों) की अपूर्व रची है ॥

(२३४/८४२) टीका । कवित्त ।

जगन्नाथ क्षेत्र मांझ बैठे महा प्रभु जू वे, चहूं ओर भक्त भूप भीर अति छाई है। बोले "विष्णुपुरी, पुरी काशी मध्य रहे, जाते जानियत मोक्ष चाह नीकी मन आई है" ॥ लिखी प्रभु चीठी "आपु मणिगण माला एक दीजिए पठाइ, मोहि लागत सुहाई है"। जानि लई बात, निधि भागवत, रत्नदाम दई पठै आदि मुक्ति खोदिकै बहाई है ॥१७७॥ (६२९—४५२)

वार्तिक तिलक ।

एक दिन श्रीविष्णुपुरी जी के सतगुरु महाराज श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी श्रीजगन्नाथपुरी में भक्तराजों की भीड़ के मध्य सन्त समाज में विराजमान थे, उन्हीं में से कोई कोई कहने लगे कि "विष्णुपुरी जीने काशी में बास किया है इस्से जान पड़ता है कि मुक्ति की इच्छा भले प्रकार मन में रखते हैं"। महाप्रभु जी ने सब को समझाया कि ऐसा नहीं है, वह उनमें से

हैं कि जो, "मुक्ति निरादरि भक्ति लोभाने" इस प्रकार के अनुरागी हैं।

और उन लोगों के समाधानार्थ यह काम किया कि इनको एक पत्र लिखा कि "रत्नों की एक माला भेज दो; मुझे प्रिय लगती है।"

आप ने श्रीमद् भागवत में से रत्न रूपी ५०० श्लोक चुन और संग्रह करके, अपूर्व माला रूपी एक पोथी "भक्तिरत्नावली" नाम रख भेज दी, कि जिस्में रूखी मुक्ति सूखे मोक्ष को तो जड़से ही खोद के बहा दिया है और भागवत धर्म हरिभक्ति भगवत प्रेम की महिमा तथा ऐसी विलक्षणता प्रकाशित की है कि जिस्को पढ़ते ही सब "साधु साधु" कह उठे। उक्त ग्रन्थ भक्तों के देखने ही योग्य है॥

(३२५/८४२) छप्पय।

"विष्णुस्वामि संप्रदाइ" दृढ़ "ज्ञानदेव"[1] गंभीर मति॥ "नाम[2]" "तिलोचन[3]" शिष्य, सूर शशि सदृश उजागर। गिरा गंग उनहारि काव्य रचना प्रेमाकर॥ आचारज, हरिदास, अतुल बल आनँद दायन। तेहिं मारग "बल्लभ[4]" विदित, पृथुपधति परायन॥ नवधा प्रधान सेवा सुदृढ़, मन बच

क्रम हरि चरन रति। विष्णुस्वामि संप्रदाइ दृढ़ "ज्ञानदेव" गंभीर मति ॥४३॥ ($\frac{४८}{२१३}$)

वार्तिक तिलक ।

श्रीविष्णुस्वामीसम्प्रदाय में, गम्भीरमति "श्री ज्ञान देव" जी प्रसिद्ध हैं; जिन के शिष्य (१) श्री नामदेव जी और (२) श्री तिलोचन जी, सूर्य्य तथा चन्द्र के सरिस उजागर हुए और श्री ज्ञानदेव जी की गिरा (बाणी) श्री गंगा जी की नाईं निर्मल और संसार को पवित्र करनेवाली हुई, जिस बाणी से प्रेम की खानि काव्य की रचना कर हरि यश गाया । आचार्य्य (गुरु-वर्ग), तथा हरिभक्तों का, अतुलित बल विश्वास आप के हृदय में था; जिन सबों को अति आनन्ददाता हुए ।

१. श्री ज्ञानदेव जी;	३. श्री त्रिलोचन जी;
२. श्रीनाम देव जी;	४. श्री बल्लभाचार्य्य जी।

इसी मार्ग (सम्प्रदाय) में, जगविख्यात, पृथुपद्धति अर्थात् प्रभु पूजन अर्चन में परायण, "श्रीबल्लभाचार्य्य जी" हुए; कि जिन्होंने नवधा भक्ति ही को प्रधान मान, प्रभु की सेवा में अत्यन्त दृढ़ होकर मन बचन कर्म से श्रीहरिचरणों में प्रीति की ।

बिष्णुपुरी जी ने भगवत धर्म को अति उतंग मान करके, आन धर्मों को नहीं देखा । अथवा, अन्य धर्मों की आन [कानि] रखने की तो बात क्या, उनकी ओर देखा भी नहीं ।

[$\frac{२२६}{८४२}$] टीका । कवित्त ।

विष्णुस्वामि सम्प्रदाई बड़ोई गंभीर मति, "ज्ञान-

देव" नाम, ताकी बात सुनि लीजियैं। पिता गृहत्यागि, आइ ग्रहण सन्यास कियो, दियो बोलि झूठ "तिया नहीं," गुरु कीजियैं॥ आई सुनि बधू पाछें, कह्यो जान्यो मिथ्याबाद, "भुजनि पकरि मेरे संग करि दीजियैं"। ल्याई सो लिवाइ, जाति अति हीं रिसाइ, दियो पंक्ति मैते डारि, रहें दूरि, नहीं छीजियैं॥१७८॥ (६२९—४५१)

श्रीज्ञानदेवजी ।

वार्त्तिक तिलक ।

विष्णुस्वामीसम्प्रदाय में बड़े गम्भीरमति श्री ज्ञान देव जी, उनकी कथा सुनिये। आपके पिता ने अपना घर छोड़ आके सन्यास ले लिया। पूछने पर गुरुजी से झूठ कहा था कि "मेरे पत्नी नहीं है, मुझे शिष्य कर लीजिये" (क्योंकि स्त्री रहते संन्यासी वैरागी बनाने वाले को बड़ा दोष होता है)॥

परन्तु पीछे उनकी स्त्री पहुँची और बिगड़ के कहने लगी कि "हे महाराज! बलसे हाथ पकड़ के इनको मेरे साथ करही दीजिये", और आपको अपने साथ घर लेही आई। जाति के ब्राह्मणों ने अत्यन्त क्रोध करके इन दोनो को अपनी पंगति से निकाल दिया कि "अब मिलने योग्य नहीं हैं,"। इससे जाति पांति से पृथक रहते थे॥

(२३७/८४२) टीका । कवित्त ।

भए पुत्र तीन, तामें मुख्य बड़ो ज्ञानदेव जाकी कृष्ण-

देव जू सों हिये की सचाई है। बेद न पढ़ावे कोऊ कहैं सब "जाति गई," लई करि सभा अहो कहा मन आई है ॥ "बिनस्यो ब्रह्मत्व" कही "श्रुति अधिकार नाहिं," बोल्यो यों निहारि "पढ़ै भैंसा" ले दिखाई है । देखि भक्ति भाव, चाव भयो, आनि गहैं पांव, कियोई सुभाव वही गही दीनताई है ॥१७९॥ (६२९—४५०)

वार्त्तिक तिलक ।

उनके तीन पुत्र हुए जिनमें सब से बड़े श्री ज्ञानदेव जी हैं जिनको श्री भगवतचरण में सत्य प्रेम था (दूसरे "महानदेव;' तीसरे "सोपानदेव") ॥

जब श्री ज्ञानदेव जी पढ़ने योग्य हुए, तब ब्राह्मणों के पास बेद पढ़ने गए; परन्तु किसीने पढ़ाया नहीं; कारण यह कहके कि "तुम्हारा ब्राह्मणत्व नष्ट हो गया है" । श्रीज्ञानदेव जी भगवत विभूति साधु अवतार तो थे ही, अतः सभा करके इनने सब ब्राह्मणों से कहा कि "आप लोगों के मन में हमारी क्या न्यूनता आई है, क्यों बेद नहीं पढ़ाते ?" ब्राह्मणों ने वही उत्तर दिया कि "तुम्हारे पिता सन्यास लेकर पुनः आय के गृहस्थ हुए इससे तुम्हारा ब्रह्मत्व नष्ट हो गया, बेद का अधिकार नहीं रहा" ।

आपने कहा कि "पूर्णब्रह्म श्री भगवान् को मन कर्म बचन से सप्रेम जाननेवाला वास्तविक ब्राह्मण है, नकि केवल वेद पाठी ही; वेद तो एक भैंसा भी पढ़

सकता है" इतना कह कर जिस्के स्वास से बेद हुए हैं उन श्री युगलसर्कार (ललीलाल) का स्मरण कर, पास के एक भैंसे को कि जो संयोग से वहां ही आ गया था, आज्ञा की कि "वेद पढ़ सुना"। वह पशु, शिक्षित ब्राह्मण से भी भली रीति तथा उत्तम मधुर स्वर से स्पष्ट और शुद्ध बेद पढ़ चला। सुनके सबकी बुद्धि चक्कर में आगई, लज्जित हुए, और भगवत की भक्ति में प्रतीति की; श्री भक्ति महारानी का प्रभाव और प्रताप जाना।

श्रीज्ञानदेव जी के चरणोंमें पड़कर अपने देह जात्याभिमानको त्याग, आप के शिष्य, तथा अनुमतमें स्थित हो, दीनतापूर्व्वक भगवत भक्ति ग्रहण की॥

श्री त्रिलोचन जी।

(२३८/८४१) टीका कवित्त।

भये उभै शिष्य नाम देव श्री तिलोचन जू, सूर शशि नाई कियो जग में प्रकास है। "नाम" की तो बात सुनि आए; सुनो दूसरे की सुनेई बनत भक्त कथा रस रास है॥ उपजे बनिक कुल सेवे "कुल अच्युत" कों ऐपै नहिं बने, एक तिया रहे पास है। टहलू न कोई "साधु मनही की जानि लेत" येहि अभिलाष सदा दासनि को दास है॥ १८०॥ (६२१—४४१)

"नाम"=श्री नामदेव जी। "अच्युत कुल"=वैष्णव।

वार्तिक तिलक।

श्री ज्ञानदेव जी के दो शिष्य हुए (१) श्री नाम

देव जी और (२) श्री त्रिलोचन जी। सूर्य्य और चन्द्र के समान दोनों ने संसार में प्रकाश किया। जिन मेंसे "श्री नामदेव जी" की वार्त्ता तो ऊपर (पृष्ठ ५०१) में कही ही जा चुकी है; दूसरे (श्री त्रिलोचनजी) की भक्ति की कथा ऐसी अपूर्व रस की भरी है कि सुनतेही बनता है; सो सुनिये—

आप वैश्य वर्ण में उत्पन्न थे; और "अच्युत कुल" अर्थात् वैष्णवों, की सेवा किया करते। दोही प्राणी थे, आप और इनकी धर्मपत्नी; घर में तीसरा कोई न था। आप को साधुसेवा में ऐसा प्रेम था कि सदा यही बड़ी लालसा रहती थी कि 'हरि कृपा से कोई ऐसा नोकर हाथ लगता कि जो सन्तों के मन की बूझ बूझ उनकी रुचि के अनुसार टहल किया करता'; ये हरिदासों के दास, इसी सोच बिचार में रहा करते थे॥

(२२१/८४२) टीका। कवित्त।

आए प्रभु, टहलुवा रूप धरि. द्वार पर, फटी एक कामरी पन्हैया टूटी पाय हैं। निकसत पूछें "अहो कहां ते पधारे आप? बाप महतारी और देखिये न गाय हैं॥ "बाप महतारी मेरे कोऊ नाहिं सांची कहौं, गहौं मैं टहल जो पै मिलत सुभाय है"। "अनमिल बात कौन? दीजिये जनाय वहू," "पाऊं पांच सात सेर, उठत रिसाय हैं" ॥ १८१॥ (६२९-४४८)

"गाए हैं" = कथन किया।

वार्त्तिक तिलक ।

भक्त की अनोखी अभिलाषा जान, एक दिन स्वयं प्रभुही एक टहलू के रूप से; कंधे पर फटी कमली धरे पावों में टूटी पनही पहिने, आप के द्वार पर आ ही तो पहुँचे।

श्री त्रिलोचन जी ने घर से निकलतेही आप को देख मा बाप घर आदि का प्रश्न किया। आपने उत्तर दिया कि "सच कहता हूं मेरे बाप मां कोई नहीं हैं। जो मुझे रक्खे, और मेरा उसका स्वभाव मिल जाय, तो मैं सेवा टहल भले प्रकार करता हूं"। श्री तिलोचन जी ने पूछा कि "आपके सुभाव में अनमिल वार्त्ता कौनसी है? सो भी तो बता दीजिये"। टहलू जी ने उत्तर दिया कि "मैं पांच सात सेर खाता हूं; इसी से जिसके हां रहताहूं सो रिसाय उठता है, ग्लानि मानने लगता है; तब मैं चलही देता हूं॥"

(२३०/८४१) टीका। कवित्त।

"चारि हू बरन की जु रीति सब मेरे हाथ, साथ हू न चाहौं, करौं नीके मन लाइ कै। भक्तन की सेवा सो तौ करत जनम गयो, नयो कछु नांहि, डारे बरस बिताइ कै॥ "अंत्रजामी" नाम मेरो, चेरो भयो तेरो हौं तो," बोल्यो भक्त "भाव, खावौ निशँक अघाइ कै।" कामरी पन्हैयां सब नई करि दई, और मीड़ि कै न्हवायो, तन मैल कौं छुटाइ कै॥१८२॥ (६२९-४४७)

वार्तिक तिलक।

"चारो वर्णों की रीति मैं सब जानता हूं, मेरे हाथों में है, और अकेलाही सब टहल कर लेताहूं, मन लगाके भली भांति सेवा किया करताहूं; विशेष करके हरि भक्तों सन्तों की सेवा तो करते बरसों क्या बरन् सारा जन्म बीता, कुछ नई बात नहीं; मेरा नाम "अन्तर्यामी है; मैं आपका चाकर हुआ।"

(दो०) "चार बरन की चातुरी सरै न मेरो काम।
भक्त सेव जो जानई तौ रहु मेरे धाम"॥

तब श्री त्रिलोचन जी ने हर्षित होकर कहा कि "जितना चाहो उतना अघाके खाइयो, कुछ शंका मत करो"।

इनको अच्छी प्रकार से अंग मांजमांज के स्नान कराकर, पगरखी (पनही) तथा कमली आदि नई मँगवादी॥ तब सन्तों का टहल सौंपा॥

(२११/४१२) टीका। कवित्त।

बोल्यो घरदासी सों, "तूं रहै याकी दासी होइ, देखियो उदासी देत ऐसो नहीं पावनो। खाय सो खवावो, सुख पावो नित नित कियै, जियैं जग माहिं जौलौं मिलि गुन गावनो"॥ आवत अनेक साधु, भावत टहल हियें, लिये चाव दाबै पाँव, सबनि लड़ावनो। ऐसें ही करत, मास तेरह बितीत भए, गए उठि आपु, नेकु बात को चलावनो॥१८३॥ (६२९—४४६)

वार्तिक तिलक।

स्त्री से कहा कि "तू इसकी दासी सी रहियो, दे-

खना, उदास होके खाने को देने से यह चला जावेगा और फिर ऐसा सेवक मिलने का नहीं, जितना खाय सो खिलाना, सुख पूर्वक नित्यही इसके लिये रोटी करना। जब तक हम तुम जियैं, तब तक तीनों मिल जुलके साधु सेवा और भगवत का भजन करैं" अस्तु। इस भांति इनके भोजन के विषय में बिशेष करके उसे समझा बुझा दिया।

अब अन्तर्यामी ने सन्तों की टहल आरम्भ की; साधु ते यहां पहिलेही से अनेक आया करते थे, पर अब औरभी अधिक आनेलगे; क्योंकि अन्तर्यामी उनकी बड़ी चाव भाव से टहल सेवा करते, चरण चांपते; "अन्तर्यामी" अन्तर्यामी ही निकले; जिसकी जो रुचि होती वैसीही करते, जो जहां पुकारते उनके पास वहीं पहुँच जाते; इसी रीति से सब सन्तों को लाड़ लड़ाया करते थे;। निदान चारो खूंट में श्री त्रिलोचन जी की साधुसेवा की धूम मच गई।

इसी भाँति एक बर्ष से एक महीना अधिक बीततेही, तनक सी बात चलातेही उसीक्षण "अन्तर्यामी" अन्तर्धान ही हो गए॥

(२३२/८४२) टीका। कबित्त।

एक दिन गईही परोसिनि कैं भक्तबधू, पूछि लई बात "अहो! काहे कौं मलीन हैं?" बोली मुसुकाय, "वे टहलुवा लिवाय ल्याये, क्यौंहू न अघाय खोट, पीसि

तन छीन है ॥ काहू सौं न कहीं, यह गहीं मन मांझ एरी, तेरी सौं सुनैगो जौ पै जात रहै भीन है" । सुनि लई यही नेकु, गए उठि, हुती टेक, दुखहूं अनेक जैसे जल बिन मीन है ॥१८४॥ (६२९–४४५)

"भीन" - भिनसारे, प्रभात, सबेरे । "वे" = मेरे पति ।

वार्तिक तिलक ।

एकदिन श्री त्रिलोचन जी की घरनी, अपने एक पड़ोसिन के पास गईथी; उसने पूछा कि "अरी सखी! तुम दुबली क्यों हुई जाती हो ? "इसने मुसकाय के उत्तरदिया कि "बहिन! ये (मेरेस्वामी) एक टहलुवा लाए हैं; वह खोटा पांच सात सेर खाता है तौभी उस्का पेट भरता ही नहीं, उसी के लिये (आटा पीसते) रोटी करते मैं पिसी जाती हूं । इसी से शरीर दुर्बल हो गया है । परन्तु, बहिन! यह भेद तुम्ही से कहती हूं, तुम अपने मनही में रखना किसी से कहना नहीं, जो वह सुन पावेगा तो भीनहीं (सवेरे ही) चलदेगा" ।

फिर क्या था, अन्तर्यामी ने सुना और कर्पूर से उड़गए। यह तो पहिलेही टेक धराली थी हीकि "भोजन करने की निन्दा होतेही मैं आगे ठहरने का नहीं" ।

अन्तर्यामी के चले जाने से भक्तराज जलहीन मीन की नाईं अति बिकल हुए ।

(२/८ १/४ १/२) टीका कवित्त ।

बीते दिन तीनि, अन्न जल करि हीन भये, "ऐसो

सो प्रवीन अहो फेरि कहाँ पाइयें?। बड़ी तूं अभागी! बात काहे कों कहन लागी? रागी साधु सेवा मैं जु कैसे करि ल्याइयें?॥ भई नभ बानी "तुम* खावो पीवो पानी, यह मैंही मति ठानी, मोकौं प्रीति रीति भाइयें। मैं तो हौं अधीन, तेरे घरही मैं रहौं लीन, जोपैं कहौ, सदा सेवा करिबे कौं आइयें॥१८५॥ (६२९-४४४)

*तुम खावो पीवो पानी। पाठान्तर "खावो अन्न पीवो पानी"

वार्त्तिक तिलक।

अन्तर्यामी के बिना, श्री त्रिलोचन जी को अन्न जल बिन तीनदिन व्यतीत होगए; स्त्री से बोले कि "आह! वैसा प्रवीण सेवक फिर कहां मिलनेका? अब मैं साधु-सेवा किस प्रकार से करूं?" अभागिन! तूने क्यों उस्की वार्त्ता चलाई? वह साधु सेवा में अति अनुरागी था। अब उस्को कहां से कैसे लाऊं? भक्तराज त्रिलोचन जी को आकाशवाणी हुई कि "तुम प्रसाद पाओ जलपान करो उपवास मत करो, यह 'अन्तर्यामी' नामक तुम्हारा टहलू मैं ही था; और मैं सदा तुम्हारेही पास हूं भी; यदि अब भी तुम्हारी इच्छा हो, तो वैसोही सेवकाई सन्तों की मुझे स्वीकार है; मैं तो सदैव भक्तों ही के अधीन हूं, कहो तो फिर पहुँचूं?"

(२/८ ३/७ ४/२) टीका। कवित्त।

"कीने हरिदास, मैं तो दास हू न भयौं नेकु, बड़े उपहांस मुख जगमें दिखाईयैं। कहैं जन "भक्त" कहा

भक्ति हम करी कहां? अहो! अज्ञताई रीति मन मैं न आइयैं ॥ उनकी तौ बात बनि आवै सब उनहीं सौं गुन ही कौं लेत मेरे औगुन छिपाइयैं। आए घर मांझ तऊँ मूढ़ मैं न जानि सक्यौं! आवै अब क्यौंहूं धाय पाय लपटाइयैं" ॥१८६॥ (६२९—४४३)

वार्तिक तिलक।

इस प्रकार श्रीप्रभु की आकाश बानी सुन त्रिलोचन जी ग्लानि से बिलाप करने लगे कि—

"मैं कैसा दास हूं हा! मुझ से दासत्व भी कुछ न बना! स्वयं प्रभु दास होके रहे, यह भारी उपहास की बात हो गई, मैं संसार में क्या मुँह दिखाऊं? लोग मुझे भक्त कहते हैं, धिक्कार मेरी भक्ति को!! ऐसी अज्ञानता मेरी सो प्रभु के मन में भी न आई।"

सर्कार की बात तो सर्कारही से बनआती है, दूसरे की सामर्थ्य कहां? शील, स्वभाव, कृपा की बलिजाऊं, आप तो गुणही को ग्रहण करते हैं, शरणागत के दोषों को छिपाते हैं। घर में आप कृपा करके इतने दिनों बिराजमान रहे, तब भी मुझ मूढ़ ने न जाना। अब कैसेहू पाऊं तो दौड़ कर चरण कमलों में लपट जाऊं।" इसी प्रकार श्रीत्रिलोचन जी ने प्रेम पश्चात्ताप कर, फिर श्री प्रभु की कृपालुता स्वभाव स्मरण पूर्बक भजन और सन्त सेवा में जीवन को व्यतीत किया।

"तुमकहँ, भरत! कलंक "यह, हमसबकहँ उपदेश" ॥

भक्त भक्ति भगवन्त की जय! जय!! जय!!!

(२३५ / ८४२) टीका कवित्त ।

श्री बल्लभाचार्य्य जी ।

हिये में सरूप, सेवा करि अनुराग भरे, ढरे और जीवनि की, जीवनि कौं दीजियें । सोई लै प्रकास घर घर में बिलास कियो, अति ही हुलास, फल नैननि कौं लीजियें ॥ चातुरी अवधि, नेकु आतुरी न होति किहूं, चहूं दिशि नाना राग भोग सुख कीजियें । "बल्लभ जू" नाम लियो "पृथु" अभिराम रीति, गोकुल मैं धाम जानि सुनि मन रीझियें ॥१८७॥ (६२९—४४२)

वार्त्तिक तिलक ।

श्री बल्लबाचार्य्य जी की बात्सल्य रस भरी भक्ति रीति अति अनूप थी । हृदय में प्रभु स्वरूप का ध्यान धरे हुवे अन्तर तथा बाहर में अति अनुराग से सेवा पूजा करते थे । ध्यान सेवा सुख पाकर आप अनुग्रह कर और जीवों की ओर ढरे । यह बिचार किया कि यह जगतजीवनप्रभु की अमृत संजीवनी भक्ति अपने आश्रित जनों को भी देना चाहिये । सो ऐसा ही किया, कि वह प्रीति रीति शिष्य वर्गों के घर घर में प्रकाशित कर प्रभु के बिलास में हुलास पूर्ण कर दिया । आप के सदन में, तथा सेवकों के घरों में, प्रभु विग्रह की झांकी कर नेत्र सफल होते थे । सेवा आदिक कृत्यों में आप चातुरी की अवधि, और परम धीर थे; किसी प्रकार से किंचित भी आतुरता आप से

नहीं होती थी। नानाप्रकार के भोगपदार्थ तथा राग-रागियें से यशलीलागान का आनन्द लिया करते थे।

श्रीबल्लभाचार्य्य जी
|
श्रीलक्ष्मणभट्ट
|
श्रीबिष्णुस्वामी जी
|
श्रीनामदेव जी तथा श्रीत्रिलोचन जी
|
शिव जी से ४६ वें श्रीज्ञानदेव जी

श्रीज्ञानदेव जी के छप्पय (पृष्ठ ५५५) में जो श्री १०८ नाभा स्वामी जी ने "पृथु पद्धति परायण अभिराम रीति वाले श्रीबल्लभ जी" लिखा, सो उनका श्रीगोकुल में स्थान है। इनको जानके और सुयश सुनके मेरा मन इन में रीझ गया है॥

[३११/४१२] [टीका कवित्त]

गोकुल के देखिबे कौं गयो एक साधु सूधो, गो कुल

मगन भयो रीति कछु न्यारियें। छोंकर के वृक्ष पर बटुवा झुलाइ दियो, कियो जाय दरशन, सुख भयो भारियें॥ देखै आइ नाहीं प्रभु, फेरि आप पास आयो चिंता सौं मलीन देखि, कही जा निहारियें। वैसेई सरूप केइ; गई सुधि खोल्यो आनि, लीजिये पिछानि कह्यौ सेवा नित धारियें॥ १८८॥ (६२९—४४१)॥

"छोंकर" = क्षेमंकर, शमी का वृक्ष।

॥ वार्त्तिक तिलक॥

एक समय एक सरल चित्त वाले सीधे सन्त गोकुल तथा आप के देखने को गए, वहां की लोकोत्तर प्रेमोद्दीपक रीति देखके बड़े प्रसन्न हुए, यहांतक कि गोकुल अर्थात् मन सहित सब इन्द्रियां प्रेमानन्द में डूब गईं। श्री शालग्राम ठाकुर जी का बटुआ क्षेमंकरके वृक्ष की डाल पर लटकाकर श्रीवल्लभाचार्य्य जी के दर्शन को गए। दर्शन करके और भी भारी सुख पाया। जब फिर आके देखा तो उस डाल में ठाकुर का बटुआ न पाया; तो आपके पास आके कह सुनाया। आपने सन्त को चिन्ता से मलीन देखके कहा कि "फिर जाके वहीं देखिये"। अब आके देखें तो ठीक ठीक वैसेही बहुत से ठाकुरबटुए झूल रहे हैं। साधु जी बेसुध होकर पुनः आपके पास आये। तब आपने कहा कि "अपने ठाकुर जी को पहिचान लो नित्य सेवा पूजा करते हैं और अपने ठाकुर जी को पहिचानते तक नहीं"!

[२१७/८४२] टीका । कबित्त

खुलिगईं आंखैं अभिलाखैं पहिचानि कीजै दाजै जू बताइ मोहिं, पाऊं निज रूप है । कही जावो वाही ठौर देखौ प्रेम लेखौ हिये, लिये भाव सेवा करौ मारग अनूप है ॥ देखि कै मगन भयो लयो उर धारि हरि नैन भरि आये जान्यौ भक्ति को स्वरूप है । निशि दिन लग्यौ पग्यौ जग्यौ भाग पूरन हो पूरन चमतकार कृपा अनुरूप है ॥१८९ ॥ (६२१—४४०)

वार्त्तिक तिलक ।

साधु जी को झलक गई कि यह परचो आपही का हैं; और चाहा कि पहिचानें; परन्तु पहिचान में न आए; तब आप से बिनय किया कि "कृपा करके बता दीजिये जिस्में मैं अपने प्रभु की मूर्त्ति को पाऊं"। प्रार्थना सुन आपने समझाया कि "प्रेम भाव सहित सेवा किया करो; ठाकुर कहीं, और तुम कहीं; यह सप्रेम सेवा भक्ति का मार्ग अति अनूप है" । यह कह, आज्ञा की कि "उसी ठांव जाओ" । आके, अपनेठाकुरजी पाके, बड़े सुखी हुए; प्रेम जल आंखों में भर आया, और भक्ति का स्वरूप जान गए, अपने को धन्य माना । और प्रभु के सेवा अनुराग में तत्पर हो पग गए; पूर्व के उनके पूर्ण भाग्य जगे, क्योंकि श्रीवल्लभाचार्य्य जी की कृपा से प्रभु की भक्ति का पूर्ण चमत्कार देख लिया ॥

श्रीभक्त दासेभ्यो नमः। श्रीकलियुग के भक्तों की जय॥

[२/८ ३/४ ९/२] छप्पय

संत साखि जानैं सबै, प्रगट प्रेम कलियुग प्रधान॥ भक्तदास इक भूप श्रवन सीताहर कीनौं। "मार मार" करि खड्ग बाजि सागर मैं दीनौं॥ नरसिँघ को अनुकरन होइ हिरनाकुस मार्‍यौ। वहै भयौ दसरत्थ, राम बिछुरत तन छार्‍यौ॥ कृष्ण दाम बांधे सुने, तिहि छन दीयौ प्रान। संत साखि जानैं सबै, प्रगट प्रेम कलियुग प्रधान॥ ४४॥ (४९/२१३)

"भक्तदास"=श्रीराम भक्तों का दास। "भक्तदास" रूढ़ी संज्ञा अर्थात् दूसरा नाम ही है। दास्यरसावेशी भक्त॥

वार्तिक तिलक।

इस बात को सब सज्जन जानते हैं, और सन्तजन इसके साक्षी हैं कि कलियुग में प्रगट प्रेम अर्थात् अनेक भक्तों की प्रेमभाव प्रत्यक्ष देखने में आया, उसमें ये तीन प्रेमावेशी भक्त परम प्रधान हुए। उन में से (१) दक्षिण देश में श्रीसीतारामजी के दास्यरसावेशी भक्त राजा "श्रीकुलशेखरजी" हुए। इनने श्री

रामायण जी में श्री सीताहरण कथा श्रवण करते ही महा प्रेमावेश में पग के, सेना सहित खड्ग खींच के "मारो मारो क्षुद्र रावण को" इस प्रकार वीरालाप करते घोड़े पर चढ़े, दौड़ा के, घोड़े को सागर में डाल दिया। तब प्रेमग्राहक प्रभु ने दरशन देके इन्हे लौटाया ॥

"ढाई अक्षर 'प्रेम' का पढ़ा जो, पण्डित सोइ ॥"

(२) श्री नृसिंह भगवान् का अनुकरण (लीला) में एक आवेशीभक्त नृसिंह जी के रूप बने। उनने हिरण्यकशिपु बन्नेवाले को मार डाला; वेही फिर लीला में श्री दसरथ महाराज जी रूप बने और श्रीसीताराम बिछोह य अपना शरीर त्याग दिया।

(३) "श्री कृष्ण जी को श्री जसोदा जी ने बांधा" ऐसी कथा सुनतेही एक भक्ता "रतिवन्ती बाई" ने तन त्याग दिया।

प्रगट है, सबको विदित है, साधु इस्केसाक्षी हैं, कि कलियुग में "प्रेम प्रधान है"; कलियुग के प्रेमियोंमें तीन प्रधानआवेशीहैं, इनका प्रेम प्रत्यक्ष सच होगया ॥

(२ ३ ६ / ८ ४ २) टीका। कवित्त।

सन्त साखिजानैं कलिकालमैं प्रगट प्रेम बड़ोईअसत जाके भक्ति में प्रभाव है। हुतो एक भूप राम रूप तत-पर महा, राम ही की लीला गुन सुनैं करि भाव है ॥ बिप्र सों सुनावै सीताचोरी को न गावै हियो खरो भरि-

आवै, बह जानत सुभाव है। पख्यो द्विज दुखी निज सुवन पठाइ दियो जाने न सुनायो भरमायो कियो घाव है ॥११०॥ (६२१—४३९)

वार्त्तिक तिलक।

इसके साक्षी साधु हैं कि कलिकाल में प्रेमही प्रगट है क्योंकि इन तीनों का प्रेम प्रगट हो गया। उसको बड़ा अभागा और गयाही हुआ जानो कि जिसको इन सन्तों की कथा सुन के भी, श्रीभक्ति जी में अभाव अर्थात् अनादर ही बना रहै।

श्री भक्त दास कुलशेखर जी।

दक्षिण में एक राजा श्रीरामोपासक श्रीराम रूप में बड़े अनन्य दास्य रसावेशी प्रेमी भक्त थे; श्री जानकीजीवन जी का परत्व उन्हें जैसा चाहिये वैसा था; बड़े भाव से श्री अवध बिहारी जी की लीला श्रीबालमीकीय रामायण कथा सुना करते थे। इनका "कुल शेखर" नाम था; "भक्तदास" नाम से भी प्रसिद्ध थे। जो बिप्र पण्डित उनको कथाश्रवण कराते थे वे इनके अलौकिक प्रेम को जानते थे, क्योंकि एक समय अरण्य काण्ड की खरदूषण की चढ़ाई की कथा सुनकर राजा आवेश में आ गया, आप घोड़े पर चढ़ हथियार बांध सेना साथ ले, शीघ्रतम पयान करने की आज्ञा दी। तो चतुर पण्डित ने देशकालानुसार युक्ति से इनको

लौटाया—तस्मात् श्री महारानी जी के चोरी की कथा उनने इन्हे कभी नहीं सुनाई।

एक दिन श्री पण्डित जी दुखी हुए, इस्से अपने पुत्र को कथा सुनाने के लिये भेजा। राजा का सुभाव नहीं जानने से उसने श्रीसीता हरण सुनाया; सुनतेही भक्त राजा को यह भ्रम आ गया कि यह इसी समय सत्य हो रहा है। इस्से हृदय में घाव सरीखा दुःख हो गया। राज ने लंका की ओर धावा किया॥

(२४०/८४२) टीका कवित्त।

"मार मार" करि कर खडग निकासि लियौ, दियौ घोरौ सागरमैं, सो आवेस आयो है। "मारौं याहि काल दुष्ट रावन बिहाल करौं, पावन को देखौं सीता" भाव दृग छायो है॥ जानकी रवन दोऊ दरशन दियो आनि, बोले "बिनप्रान कियौ, नीच फल पायो है"॥ सुनि सुख भयो, गयो शोक हृदै दारुन जो, रूप की निहारनि यों फेरि कै जिवायो है॥१९१॥ (६२९—४३८)

वार्त्तिक तिलक।

खड्ग निकाल "मार मार" कहता, लङ्का की ओर घोड़ा दौड़ाया यहां तक आवेश आया कि समुद्र में भी घोड़ा डालही दिया; "दुष्ट रावण को व्यथित कर दूंगा, इसी क्षण मारडालूंगा; अपनीमाता श्रीजानकीजी महारानीके चरणकमलके दरशनकर अभी ले आऊंगा"।

इस प्रकार बीरवाक्य कहते हुवे प्रम में मग्न और नयनों में प्रेमाश्रु भरे हुए सागर में चले ही जारहे थे–कि उसी क्षण, भक्तप्रणपालक प्रेमनिर्वाहक जन-रक्षक श्रीजानकी जानकीरमण जी श्री लक्ष्मण जी और श्रीहनुमदादि कपि सेना समेत पुष्पक विमानारूढ़, भक्त के समीप आकाश में प्रगट हो, दर्शन दे, इन्हें कृतकृत्य कर, बोले कि "हे प्रिय पुत्र! उस दुष्ट को हमने सपरिवार मारडाला, उस नीच रावण ने अपनी करनी का फल पाया। तुम चिन्ता मत करो; देखो अपनी माता के दर्शन करो। हम अब अपनी राजधानी श्रीअयोध्या जी को जाते हैं, तुम भी घर जाओ" ॥

श्री बचनामृत सुनते ही इनके हृदय से दारुण शोक जाता रहा; दर्शन पाके अति कृतार्थ हुए। "मृतक शरीर प्राण जनु पाये॥" आप लौट के अपने घर आए।

परमावेशी भक्त श्री कुलशेखर जी की जय।

"प्रेम कलियुग प्रधान"।

"कलिकाल में प्रगट प्रेम"।

"कलियुसम युग आन नहिँ, जो नर करि विश्वास।
गाइ राम गुण गण विमल, भव तर बिनहि प्रयास॥
"कलि कर एक पुनीत प्रतापा।
मानस पुण्य होयँ, नहिँ पापा॥"

"कलि केवल रघुपति गुण गाहा ।
गावत नर पावहिं भव थाहा" ॥
"सुनु व्यालारि, करालकलि, बिनुप्रयास निस्तार" ॥
"कृतयुग, त्रेता, द्वापर, पूजा, मख अरु जोग ।
जो गति होय सो कलिविषे, 'नाम' तें पावहिं लोग" ॥
"रामनाम जपु जिय सदा सानुराग रे ।
कलि न विराग जोग जाग तप त्याग रे"
"रामहिं केवलप्रेम पियारा ।
जानिलेहु जे जाननिहारा" ॥
मिलहिं न रघुपति बिनुअनुरागा ।
किये योग जप ज्ञान विरागा ॥"
कालधर्म नहिं व्यापहिं तेही ।
रघुपतिचरणप्रीति रति जेही ॥"

और युगों से कलियुग में, कमलनयन श्रीहरि ने जीवों पर विशेष करुणा की है ॥

(२४१/८४२) टीका । कवित्त ।

नीलाचल धाम तहां लीला अनुकर्न भयो, नरसिंघ रूप धरि, सांचे मारि डार्यो है । कोऊ कहैं द्वेस, कोउ कहत आवेस, "तौ पै करी दशरथ"; कियो; भाव पूरो पार्यो है ॥ हुती एक बाई, कृष्ण रूप सों लगाई मति, कथा में न आई, सुत सुनी, कह्यो धार्यो है । "बांधे जसुमति" सुनि औरै भई गति, करि दई सांची रति, तन तज्यो, मानी वार्यो है ॥१९२॥ (६२९—४३७)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीलीलानुकर्ण भक्त जी।

एक समय श्रीनीलाचल धाम में लीला होती थी। इन सत्य प्रेमावेशी भक्त जी को लोगों ने लीला अनुकरण में "श्रीनृसिंह भगवान्" का स्वरूप बनाया; आपने आवेश में आके, जो हिरण्यकशिपु बना था उसको पेट फाड़ के मारही डाला। सज्जन तो इसका कारण श्रीनृसिंह जी का सच्चा आवेश बताते थे, और दुर्जन लोग मारडालने का कारण द्वेष (वैर भाव) कहते थे।

अन्ततः यहबिचारहुआ कि "इनको श्रीरामलीला में श्रीदशरथ जी महाराज का अनुकरण स्वरूप बनाओ और देखो कि आवेश होता है वा नहीं"।

ऐसाही किया गया; आपका भाव तो सच्चा था ही, पूरा पड़ा; अर्थात् आवेश में आकर श्रीप्राणनाथ रघुनाथ के बन यात्रा में बिछुरतेही, आपने शरीर को तृण सरीखा त्याग ही तो दिया।

सब ने जाना कि भावावेश पूरा था॥

श्रीरतिवन्ती जी।

श्रीरतिवन्ती जी नाम की एक बाई जी वात्सल्य निष्ठा से श्रीकृष्णभगवान् में अत्यन्त प्रेम रखती थीं; भगवान् को अपना बेटा जानती और चाहती थीं; कथा सुन्ने का भी नित्य नियम था।

एक दिवस आप कथामें नहीं गईं, कि उस दिन ऊखलीबन्धन की कथा थी। बालक जी नित्य साथ जाया करता था, लौट कर उसने जब वही कथा आप को सुनाई, तो यह सुन्तेही कि 'परम सुकुमार श्रीकृष्णचन्द्र जी की माता यशोदा जी ने ऊखल में बांधा है" आप अति व्याकुल हुईं, तड़पने लगीं, और ही गति हो गई, अर्थात् सच्ची प्रीति से, कोमल अन्तःकरण में प्यारे का इतना दुःख न सहकर प्राण ही श्रीभक्तवत्सल जी महाराज पर न्योछावर कर दिये॥

भाव इसको कहते हैं॥

श्रीभक्ति महारानी जी की जय! जय!! जय!!!

तीसरा भाग

श्रीसीतारामार्पणम्

श्रीहनुमते नमः

(मूल ४९) (पृष्ठ ५७८)

[टीका क० १९२] [४९+१९२=२४१]

इति शुभम्॥

(कवित)

सोयो जौन "सरजू" के पास मैं पसारि पग, सो तो मानौ जोग की समाधि सुख स्वै चुक्यौ; जोयो जौन नैन "राम-नैनजलजातजा" को, सो तो ही के नैन मानौ ब्रह्म ज्योति ज्वै चुक्यौ॥ बोयो जो "वसिष्ठजा" को प्रेम बीज उर बीच, मानौ सो प्रमोद प्रद कल्प-बृक्ष ब्वै चुक्यो; धोयो "रामगंग" मैं जो अंग रसरंग-मणी, सो तो जग जनम मरन दाग ध्वै चुक्यो॥१॥
लेत मुख नाम "रामगङ्ग" रसरङ्गमणी ! देत सुख संग, भारी भव भीति भूलती। शरद ससी के कल किरनै समान तुंग तरल तरंग ताके ताप निरमूलती॥ परसत पाथ, सीतानाथ अनुराग बाग बेलि रसकेलि उर फैलि फलि फूलती। सरजू के कूल कौन पूछै रिद्धि, सिद्धि भुक्ति ,मुक्ति, झुण्ड झाउन के झारन में भूलती॥२॥

(सवैया) कैधो विराट स्वरूप सुबृक्ष पै मुक्ति मरालनि केरि कतार है। पातकशत्रु विनाशकरी, अकि राघव की उघरी तरवार है॥ कै सबको बिनदामहिं आनँद दाइनि रामकृपा की बजार है। की रसरंगमनी अवनी पर सोहति "श्री सरजू सरि" धार है॥१॥

(श्रीरामरसरङ्गमणि)